

जुलाई-दिसंबर २००९

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका



संस्कार-सीपी

सरोज कुमार

आगमने-सामाने

सुरेंद्र रघुवंशी

१५
रुपये

जुलाई-दिसंबर २००७
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

<p>प्रधान संपादक डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"</p> <p>संपादिका मंजुश्री</p> <p>संपादन सहयोग प्रबोध कुमार गोविल जय प्रकाश त्रिपाठी अश्विनी कुमार मिश्र हम्माद अहमद खान</p> <p>संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक तथा अव्यवसायिक</p> <p>● सदस्यता शुल्क ● आजीवन : ५०० रु., त्रैवार्षिक : १२५ रु., वार्षिक : ५० रु., (वार्षिक शुल्क ५ रु. के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है) विदेश में (समुद्री डाक से) वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमांड ड्राफ्ट द्वारा केवल "कथाबिंब" के नाम ही भेजें. ● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ● ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८. फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८ e-mail : kathabimb@yahoo.com (कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.) प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक : सुभाष गिरी फोन : ९३२४०४७३४० एक प्रति का मूल्य : १५ रु. कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें. (सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)</p>	<p>क्रम कहानियां ॥ ७ ॥ बदमाश आदमी / राकेश कुमार सिंह ॥ १२ ॥ नौ चौदह की लोकल / डॉ. रमाकांत 'क्षितिज' ॥ १६ ॥ राजा सारंगा... माझा सारंगा / शिशिर कृष्ण शर्मा ॥ २० ॥ पांचवा बूढ़ा / कुंवर प्रेमिल ॥ २३ ॥ एक नये अध्याय की शुरुआत / सैली बलजीत ॥ २७ ॥ अव्यक्त / अयाज़ ख़ान ॥ ३० ॥ कोल्हू का बैल / रजनीश राय ॥ ३५ ॥ कोना भर धूप / अखिलेश कुमार</p> <p>लघुकथाएं ॥ ११ ॥ अल्ला जाने क्या होगा / डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' ॥ ५९ ॥ मन की मुक्ति / (स्व.) डॉ. महाराज कृष्ण जैन</p> <p>कविताएं / गज़लें / गीत ॥ ३४ ॥ ग़ज़ल / केशव शरण ॥ ५६ ॥ लंबी दूरी है (गीत) / जितेंद्र 'जौहर' ॥ ५६ ॥ ग़ज़ल / प्रेमलता त्रिपाठी ॥ ५७ ॥ चुनौती / राजीव नयन तिवारी ॥ ५७ ॥ सुख-संचार / डॉ. संत कुमार टंडन 'रसिक' ॥ ५७ ॥ ग़ज़ल / महेश कटारे 'सुगम' ॥ ५८ ॥ मेरा हेमंत ज़िंदा है / आनंद सिंह वर्मा ॥ ५८ ॥ नया घर / हितेश व्यास ॥ ५९ ॥ तुम्हारी छवि, सहयात्री / कृतिका केशरी ॥ ६० ॥ दहलीज / गीता डोगरा</p> <p>स्तंभ ॥ २ ॥ "कुछ कही, कुछ अनकही" ॥ ४ ॥ लेटर बॉक्स ॥ ३८ ॥ "आमने-सामने" / सुरेंद्र रघुवंशी ॥ ४४ ॥ "सागर-सीपी" / डॉ. सरोज कुमार ॥ ४८ ॥ पुस्तक-समीक्षाएं</p> <p>आवरण चित्र : डॉ. अरविंद (शिकागो शहर के पास शॉमबर्ग की नगरपालिका की कृत्रिम झील का दृश्य.) "कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.</p>
---	--

कुछ कही, कुछ अनकही

यह संयुक्तांक वर्ष २००७ का अंतिम अंक है. कुछ अपरिहार्य कारणों से इस अंक से हमें प्रेस बदलना पड़ा. नये प्रेस के साथ तालमेल बैठाने में कुछ वक़्त लग गया. किंतु हमारी उम्मीद है कि मुद्रण की नयी व्यवस्था से हमें पत्रिका के कलेवर को पहले से बेहतर बनाने में अपेक्षित सहायता मिलेगी.

इस बात पर कई बार ज़ोर दिया जाता रहा है कि प्रकाशन के लिए रचनाकार अपनी अप्रकाशित व अप्रसारित रचनाएं ही हमें भेजें. कुछ लेखक थोक में रचनाएं भेजते हैं तथा साथ में कोई पत्रादि भी संलग्न नहीं होता. इन रचनाओं पर विचार करना कतई संभव नहीं है. आज देश में छोटी-बड़ी इतनी पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही हैं, किसी भी संपादक के लिए यह ट्रैक रखना कि प्रकाशन के लिए आयी रचना कहीं छप चुकी है या नहीं, मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है. लेखकों का यह स्वयं दायित्व बनता है कि वे एक साथ कई पत्रिकाओं को वे ही रचनाएं न भेजें और यदि कभी दो पत्रिकाओं से किसी रचना की स्वीकृति-सूचना आ जाये तो एक को इस बात की अवश्य जानकारी दे दें. हमारा हमेशा से प्रयास रहा है कि स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना लेखक को जल्दी से जल्दी दी जाये. जिन रचनाओं के साथ वापसी के लिए लिफ़ाफ़ा नहीं होता उन्हें लौटाना हमारी ऐसी लघुपत्रिका के लिए संभव नहीं है, लेकिन पोस्टकार्ड द्वारा इसकी सूचना अवश्य दी जाती है. कुछ लेखक पांच रुपये खर्च करके एक लिफ़ाफ़े में मात्र एक लघुकथा, एक ग़ज़ल या एक कविता भेजते हैं ऐसे रचनाकारों से विनम्र अनुरोध है कि कृपया चयन की सुविधा के लिए एक बार में कम से कम तीन-चार रचनाएं भेजें साथ में पता लिखा पोस्टकार्ड अवश्य हो.

पिछले वर्ष “कथाबिंब” पुरस्कारों की घोषणा के बाद एक जागरूक पाठक ने सूचना दी कि पुरस्कृत कहानियों में से एक कहानी कुछ वर्ष पूर्व किसी पत्रिका में छप चुकी थी. जब यह जानकारी कहानी लेखक को दी गयी तो उन्होंने स्वस्थ परंपरा का निर्वाह करते हुए पुरस्कार की राशि लौटा दी. इस वर्ष प्रकाशित कहानियों पर भी पाठकों के अभिमत आमंत्रित हैं. अभिमत पत्र अंतिम पृष्ठ पर दिया गया है. इस वर्ष से श्रीयुत कमलेश्वर जी की स्मृति में यह पुरस्कार “कमलेश्वर स्मृति पुरस्कार” के नाम से जाना जायेगा.

अब कुछ इस अंक की कहानियों पर राकेश कुमार सिंह की कहानी “बदमाश आदमी” शिक्षा के छोटे-बड़े केंद्रों में किस तरह खुलेआम नकल होती है इस बात को बखूबी रेखांकित करती है. ऊपर से नीचे तक सभी इसमें लिप्त हैं और यदि कोई कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक इसका विरोध करता है तो उसे बदमाश आदमी करार कर दिया जाता है. “नौ चौदह की लोकल” कहानी में डॉ. रमाकांत क्षितिज मुंबई की जीवन-रेखा कही जाने वाली लोकल में नित्य प्रति यात्रा करने वालों से परिचय करा रहे हैं. हर स्टेशन पर भीड़ चढ़ती-उतरती है और गंतव्य के पास आते-आते खाली हो जाती है. पुनः कल प्रारंभ होगी एक दूसरी यात्रा ! अगली कहानी “राजा सारंगा माझा सारंगा” (शिशिर कृष्ण शर्मा) भी सपने दिखाने वाली मायावी नगरी मुंबई की कहानी है. असंख्य लोग कहां चले जाते हैं कुछ पता ही नहीं चलता. “पांचवा बूढ़ा” (कुंवर प्रेमिल) हमारे आसपास की कहानी है. समाज के लिए सोचने-समझने और अच्छा काम करने वालों की कमी नहीं है परंतु कुछ असामाजिक और स्वार्थी लोग ऐसे लोगों को धकियाकर सारे माहौल को कलुषित कर देते हैं और फिर कोई रास्ता नजर नहीं आता. सैली बलजीत की कहानी “एक नये अध्याय की शुरुआत” भी विपरीत स्थितियों से जूझने की कहानी है. सेवानिवृत्ति के बाद अपने विभाग से अपने पैसे मिलने के लिए एड़ी चोटी का पसीना बहाना पड़ता है. “अव्यक्त” में अयाज़ खान बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से अपनी मां को याद करते हैं. जीवन में बहुत कुछ ऐसा घटता है जो अव्यक्त ही रह जाता है. अपनी कहानी “कोल्हू का बैल” में रजनीश राय रेखांकित कर रहे हैं कि परिवार को एक ठोस आधार देने और जीवन का स्तर बेहतर बनाने की आपाधापी में सुबह से शाम तक जूझते रहना पड़ता है. कई बार तो नौकरी के साथ-साथ पार्ट टाइम काम भी करने पड़ते हैं. ऐसे में आदमी कोल्हू का बैल बन कर रह जाता है ! भ्रष्ट और बेइमान लोगों की आज हर क्षेत्र में तूती बोल रही है. फिर उम्मीद करनी कि पत्रकारिता में “सही” लोग आयें यह एक दिवास्वप्न ही कहा जायेगा. अपनी कहानी “कोना भर धूप” में अखिलेश कुमार बता रहे हैं कि एक छोटे से क्रस्वे में भी पत्रकार सेटिंग कर दलाली से ऊपरी कमाई करते हैं. किस तरह खबरें बनायी और दबायी जाती हैं. ऐसे में राष्ट्रीय स्तर के अखबार किस तरह बिसात बिछाते हैं, इसकी कल्पना करना मुश्किल नहीं होना चाहिए.

एक भारत में कितने भारत हैं इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन है. सूचना प्रौद्योगिकी ने सारे विश्व को एक नयी पहचान दी है. सारे संसार में भारतीय सॉफ्ट वेयर इंजीनियर छाये हुए हैं. न जाने विदेश की कितनी कंपनियों के कॉल सेंटर्स और आउट सोर्सिंग केंद्रों में ही कितने युवक-युवतियां काम कर रहे हैं ! इसके चलते मुंबई, बैंगलूर, पुणे, हैदराबाद, गुडगांव, नोएडा, कोची में नव-कुबेरों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही है. साथ ही बढ़ी है इस वर्ग की क्रय-शक्ति जिसने एक नयी सभ्यता को जन्म दिया है - “मॉल-कल्चर.” इसके अलावा भी मल्टीनेशनल कंपनियों में काम करने वालों की तनख्वाहों में भी काफ़ी वृद्धि हुई है. इसी अनुपात में सड़कों पर कारों की किस्मों और संख्या में वृद्धि हुई है. और इसके विपरीत, किसानों की आत्महत्याओं के आंकड़े कम चौकाने वाले नहीं हैं. पहले महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश और अब उत्तर प्रदेश और पंजाब से भी किसानों के मरने की खबरें आये दिन आ रही हैं. यह एक अलग भारत है. रोज़ करोड़ों रुपयों की योजनाओं की घोषणा होती है पर आम आदमी के जीवन-स्तर में कोई अंतर नहीं आता. भ्रष्ट व्यवस्था के चलते घोषित राशि का अल्पांश भी लोगों तक नहीं पहुंच पाता. ऐसे में लगता है कि देश में सरकार है ही नहीं. बहुत पहले “काले धन” की बात हुआ करती थी पर अब यह सर्वमान्य हो गया है. देश में अरबपतियों की संख्या में अतुलनीय बढ़ोतरी हुई है. फ़िल्मी सितारे जो पहले कुछ लाख लेते थे अब आठ-दस करोड़ से कम की बात नहीं करते. कभी-कभी दिखावे के लिए छापे अवश्य पड़ते हैं पर यह सुनने या पढ़ने में नहीं आता कि किसी को सजा मिली हो. देश के अंदर और बाहर नकली नोट बनाने वाले धड़ल्ले से अपना कारोबार जारी रखे हैं. बिना औद्योगिक उत्पादन बढ़े सेन्सेक्स कैसे रोज़ नये कीर्तिमान बना रहा है ? ऐसा तो नहीं है कि विदेशी आतंकवादी संगठन शेयर बाज़ार में पैसा लगा रहे हैं और जो मौक़ा बे-मौक़ा, - मियां की जूती मियां के सर पर - कहावत को चरितार्थ करने में पीछे नहीं रहते ?

कब तक देश आतंकवादी और उग्रवादी गतिविधियों को बर्दाश्त करता रहेगा ? मुंबई में थोड़े-थोड़े अंतर से होते रहे बम विस्फोट, हैदराबाद, वाराणसी, लखनऊ, फैजाबाद, रामपुर ... पूरे भारत में कहीं भी, इच्छानुसार चुने हुए समय और स्थान पर हमले होते रहते हैं. कभी केंद्र राज्य पर दोषारोपण करता है तो कभी इसका उल्टा. मुआवज़े की घोषणा की जाती है और फिर सब कुछ सामान्य ! हमें यह सोचना चाहिए कि इसके पीछे जो लोग या संगठन हैं वे बहुत ही योजनाबद्ध तरीके से सारी गतिविधियों को संचालित कर रहे हैं. इस सुनियोजित षडयंत्र को विफल करने की सरकार की क्या कोई ठोस योजना है ? इसके नियंत्रण के लिए “सॉफ्ट” विकल्प हो ही नहीं सकता. माओवादी और नक्सलवादी भी अपने एजेंडे के अनुसार देश के एक बड़े क्षेत्र में पकड़ बनाये हुए हैं. ऐसे में सरकार जिसका सबसे बड़ा धड़ा कॉंग्रेस है, अपनी ताकत मुसलमानों को रिझाने में लगा रही है. ताकि अगले लोकसभा चुनाव में मुसलमानों के वोट कॉंग्रेस को मिल जायें. प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का कहना है कि देश के संसाधनों पर पहला हक़ मुसलमानों का होना चाहिए. इस तरह तो देश के एक और बंटवारे को आप हवा दे रहे हैं. भारतीय मुसलमान इसी देश के नागरिक हैं. देश के संसाधनों पर उनका उतना ही हक़ है जितना किसी अन्य तबके या वर्ग का. न किसी से कम और न किसी से ज़्यादा. यह ठीक है कि आज़ादी से पहले और बाद में मुसलमानों ने भी देश निर्माण में हाथ बंटया लेकिन आज बिना कोई आयोग बैठाये ही बड़ी आसानी से सर्वेक्षण किया जा सकता है कि सभी अपराधियों में से मुसलमानों का कितना प्रतिशत है ? क्या यह प्रतिशत मुसलमानों की जनसंख्या के अनुपात के अनुरूप है ?

उधर धर्मनिरपेक्षता और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की दुहाई देने वाली पश्चिम बंगाल की वामपंथी सरकार जिसने नंदीग्राम में डंके की चोट पर नरसंहार करा कर नरेंद्र मोदी को भी पीछे छोड़ दिया कोलकाता से लेखिका तस्लीमा नसरीन को दिल्ली भेज देती है और केंद्र सरकार को डर के मारे तस्लीमा को किसी अज्ञात स्थान पर रखना पड़ता है. तस्लीमा कोलकाता जा कर रहना चाहती हैं किंतु सुरक्षा-व्यवस्था नहीं हो सकती ! टेनिस खिलाड़ी सानिया मिर्जा का इलाज़ करने वाले डॉ. रेड्डी को धमकी भरे पत्र मिलते हैं. सलमान रश्दी को खाना खिलाने के लिए श्रीमती गोदरेज को धमकी दी जाती है. यह सब भी इसी भारत में हो रहा है. अभी कुछ दिन पहले मुंबई नगरपालिका ने हाज़ीअली दरगाह तक जाने वाले रास्ते को, वहां के भिखमंगों को हटा कर, ठीक और सुंदर बनाने का प्रस्ताव रखा था. बहुत से भिखमंगे यहां विकलांग बनाकर छोड़े गये हैं और स्थायी तौर पर इस रास्ते पर भीख मांगते हैं. तो कुछ मुसलमानों का कहना था कि अगर भिखमंगे हट गये तो हम भीख किसे देंगे और फिर हमें सबाब नहीं मिलेगा. इसलिए उन्हें हटाना नहीं चाहिए. इसी संदर्भ में कुछ लोगों ने टीवी पर बयान दिये कि वे मुसलमान पहले हैं फिर हिंदुस्तानी ! पल्स पोलियो अभियान में भी उल्टा प्रचार किया जाता है कि यह मुसलमानों को नपुंसक बनाने की साजिश है !

हिंदुस्तानी मुसलमानों से हमारा किसी प्रकार का द्वेष नहीं है. उन्हें वे सब अधिकार प्राप्त हैं जो किसी भी भारतीय नागरिक को. अच्छे से अच्छे स्कूलों-कॉलेजों में दाखिला लेने में उन पर कोई प्रतिबंध नहीं है. सरकारी या गैरसरकारी नौकरियों में, फ़ौज या नौसेना में भर्ती के लिए योग्यताधारियों के लिए कोई रुकावट नहीं है. हां, अब तक मुख्यधारा से अलग-थलग रह कर उनका फ़ायदे से अधिक नुकसान ही हुआ है. उनका अब दायित्व बनता है कि असामाजिक तत्वों और आतंकवादियों का खुलेआम बहिष्कार करके सरकार को जानकारी दें और सबके लिए सुरक्षा का माहौल पैदा करें. संपूर्ण राष्ट्र हित में ही मुसलमानों का हित भी निहित है.

लेटर बॉक्स

✽ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून ०७ का अंक मिला. 'कुछ कही, कुछ अनकही' सदा ही बेहतरीन होता है. देश के मौजूदा हालात पर अपनी भावनाएं व्यक्त करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूं. बड़े दुख का विषय है कि राष्ट्रीय पर्व जैसे कुछ अवसरों पर राष्ट्रीय चरित्र का बखान, मानवता, नैतिकता आदि पर व्याख्यान, गांधी, नेहरू आदि महापुरुषों का गुणगान तथा 'मेरा भारत महान' जैसे नारों तक ही सीमित रह गया है. पिछले किसी अंक में डॉ. जनार्दन यादव के पत्र में बड़ी अच्छी बात लिखी है कि राजनीतिक पार्टियों में संकल्प शक्ति का अभाव है. राजनीति में अपराधी प्रवृत्ति के लोग घुस गये हैं. कानून की सरेआम धजियां उड़ाई जा रही हैं. राजनीति के नाम पर धार्मिक वैमनस्य फैलाने का काम 'संधों' और 'परिषदों' द्वारा अंजाम दिया जा रहा है. राजनीतिज्ञों के लिए शैक्षणिक योग्यता तय करनी चाहिए ताकि शिक्षित लोग राजनीति में आयें. आज कल हर एरे-गैरे, अनपढ़-गंवार पैसे और गुंडा गर्दी के बल पर मंत्री और सांसद बन जाते हैं. उनका चरित्र प्रमाणपत्र भी नहीं देखा जाता है. ऐसे अधिकतर लोग अपराधिक पृष्ठभूमि से आते हैं. बड़े शर्म की बात है कि जापान जैसे छोटे देश बड़ी प्रगति कर रहे हैं. और हमारे नेता और मंत्री राजनीतिक दांव पेंचों में उलझे हैं और जनता को मंदिर-मस्जिद की बातों में उलझा रखा है. कोई भी राजनीतिक चुनाव बिना खून खराबे के, बिना बूथ-कैपचरिंग के संपन्न नहीं होता है. कानून-व्यवस्था पंगु हो चुकी है. इसके लिए कुछ करने की बहुत आवश्यकता है. धार्मिक और राजनीतिक पार्टियों को याद दिलाया जाना चाहिए कि वे अपने दलगत स्वार्थों और वैमनस्य को छोड़ कर अपने अपने मंच से जनता को सांप्रदायिकता के खिलाफ एकजुट होने का आवाहन करें. धार्मिक और सामाजिक एकता के बारे में पोस्टरों का उपयोग करें. यदि किसी पार्टी का कोई मुखपत्र है तो उसमें एकता, प्रेम, सद्भावना पर आधारित लेख जनता तक पहुंचावें. प्रयासों के द्वारा कुछ भी संभव है. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की एक आवाज पर सारा देश अंग्रेजों के विरुद्ध एकजुट हो गया था. तो आज ऐसा क्यों नहीं हो सकता? जो राजनीतिक दल जनता की भावनाओं को भड़का सकते हैं वे जनता की भावनाओं का उचित मार्गदर्शन क्यों नहीं कर सकते? जब एक मुख्यमंत्री अपने राज्य में दंगा करवा सकता है तो अन्य मुख्यमंत्री अपने राज्यों में प्रेम, एकता और शांति का प्रचार-प्रसार क्यों नहीं कर सकते? इसके लिए दृढ़ संकल्प शक्ति वाले बुद्धिजीवी और गैर सरकारी संस्थाएं आगे आकर प्रयास कर सकती हैं. राजनीतिबाजों को उचित मार्ग दिखा सकती हैं. चिंता का विषय यह है कि हम भावी युवापीढ़ी के लिए किस तरह का वातावरण तैयार होने दे रहे हैं. क्या हमारे बच्चे आगे चल कर एक बेहतर माहौल में जी पायेंगे या उन्हें वर्तमान से बदतर हालात में जीना पड़ेगा. समस्या बड़ी विकट है, किंतु समाधान तो

✽ कथाबिंब अप्रैल-जून ०७ अंक नवंबर ०७ में मिला. विलंब का कारण संपादकीय में व्यक्त है जबकि हम डाक सेवा को कोस रहे थे.

गजेंद्र रावत की कहानी 'सुबह' वर्तमान समय के शहरी वातावरण की हकीकत बयान करती है. बड़े शहरों का क्या कहना, मधेपुरा जैसे क्रस्बाई शहर में भी यह एक आम चित्र है. वर्तमान समय में शहरी परिवार का अर्थ ही है मियां-बीबी दोनों ही कहीं न कहीं नौकरी कर रहे हैं, प्राइवेट, अर्ध सरकारी, अनुबंध या सरकारी. पत्नी स्नेह की नाइट ड्यूटी से रोज-रोज विलंब से आने के कारण पति आलोक का अपनी बेटियों आन्या-मान्या को बारी-बारी से जगाकर उनके लिए नाश्ता-लंच बनाना, उन्हें स्कूल जाने के लिए तैयार करना तथा इस तैयारी के कारण स्वयं कार्यालय में विलंब से पहुंचकर पदाधिकारी से अपमानित होना, हाजिरी बही में अनुपस्थित होना, स्पष्टीकरण पूछा जाना आदि वर्तमान शहरी सभ्यता की दर्दनाक हकीकत हैं. लेकिन कहानी की नींव विश्वास पर टिकी हुई है. इसके लिए लेखक बधाई के पात्र हैं. अन्यथा स्नेहा के रोज रोज नाइट ड्यूटी से लेट आने का अनैतिक कारण भी हो सकता था. दरअसल हमारे पूर्वज समृद्ध-स्वस्थ समाज को बनाये रखने के लिए अनेक अच्छी परंपराएं हमें देकर गये हैं जो हमें पशु-समाज से अलग रखता है. जिसमें एक परंपरा है विवाह-परंपरा, जिससे विभिन्न रिश्ते और संबंधों का जन्म होता है. जैसे पति-पत्नी, जीजा-साली, भाई-बहन, दादा-पोती, देवर-भाभी, चाचा-भतीजी, मामा-मामी आदि. इन सभी रिश्तों का एक ही मूलमंत्र है 'विश्वास'. सिर्फ विश्वास पर ही ये सब संबंध कायम हैं अन्यथा हैं तो सब नर-नारी ही. वर्तमान समय के अधिकतर फिल्म एवं टी.वी. सीरियल बहुत ही भव्य और गरिमापूर्ण ढंग से इसी 'विश्वास' को तोड़ने के काम कर रहे हैं. इसकी जितनी भी निंदा की जाय कम ही है. 'निःशब्द' देखने के बाद तो कोई मां अपनी सोलह वर्षीय बेटी को साठ वर्षीय वृद्ध के पास भी नहीं भेजना चाहेगी.

इस घोर अंधकार में 'कथाबिंब' जैसी साहित्यिक पत्रिका तथा 'सुबह' जैसी कहानी ही 'विश्वास' शब्द पर हम लोगों का विश्वास बनाये रखने का काम कर रही है.

❖ उल्लास मुखर्जी,

पानी टंकी चौक, मधेपुरा (बिहार)-८५२११२,

✽ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून अंक पढ़ा. आपके संपादकीय से ज्ञात हुआ कि विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए विदेश मंत्रालय को ९० डॉलर या ४००० रु. भेजने थे. इसका औचित्य समझ में नहीं आया. यह तो नाट्यशाला में नाटक के अभिनेताओं को टिकट बेचना हुआ.

खैर! पांचों कहानियां पढ़ीं. शशिभूषण बड़ोनी की कहानी "बुआ बहुत बीमार हैं" और कृष्ण कुमार 'आशु' की कहानी "एक कामरेड की

मौत' परंपरागत कथात्मक शैली में हैं। लेकिन घटना-बहुलता के अभाव में निष्प्रभावी रहीं। चंद्र मोहन प्रधान की कहानी सुखांत है। लेकिन शिबू भगत का चरित्र देखते हुए अचानक उसके हृदय परिवर्तन के पीछे क्या कारण रहे यह स्पष्ट नहीं हुआ। मेरे पाठकीय मन में यह सवाल या संदेह पैदा हुआ कि कहीं अपने तथाकथित जवान भांजे से भवानी की शादी करवाकर शिबू भगत अपने लिए चाल तो नहीं चल रहा है।

गोविंद उपाध्याय और राजेंद्र रावत की कहानियां ठीक-ठाक रहीं। कविताएं और गज़लें बस सामान्य सी।

❖ केशव शरण

एस २/५६४ सिकरौल, वाराणसी-२२१००२

* 'कथाबिंब' के ताज़ा अंक के आवरण पृष्ठ पर प्रकृति से जुड़ी बहुरंगता ने मन मोह लिया। रचनाओं का चयन भी सुंदर है। हर कहानी मानवीय संवेदनाओं को वाणी देती सी लगी। कविताएं तो ठीक हैं, लेकिन लघुकथाओं में कथातत्व की अनुपस्थिति सी आभासित होती है।

❖ युगेश शर्मा,

'व्यंकटेश कीर्ति', ११, सौम्या एन्वलेव एक्सटेंशन, सियाराम कॉलोनी, चूना भट्टी, कोलार रोड, भोपाल - ४६२०३९

* उत्तर विजायदशमी की शुभेच्छाएं। दीपावली आ रही है। शुभकामनाएं अग्रिम। अप्रैल-जून ०७ का 'कथाबिंब' मिला है।

सच मानना, मुखपृष्ठ पर नयानाभिराम फूलों को देख देख प्रसन्न हो रहा हूँ। क्या रंग हैं। आंखें नहीं भरतीं। बार बार देख रहा हूँ।

अंदर पीस मेमोरियल म्यूजियम वाला चित्र कितना दर्दनाक। उफ़! यह मनुष्य की क्रूरता। जीवन कितु रुकता नहीं निरंतर गतिमान रहता है। ट्रेड सेंटर और रिक्त स्थान - एक विराट निर्माण के ध्वंस की कहानी कहता रहेगा। 'कुछ कही, कुछ अनकही' पढ़कर यह पत्र लिख रहा हूँ। आपको प्रामिसूचना हो एवं मेरी प्राथमिक प्रतिक्रिया मिल जाये। कविताएं, गज़लें पढ़ी हैं। शेष सामग्री अभी पढ़ना शेष है। श्री महरूम, राजेंद्र तिवारी की गज़लों के क्या कहने। वाह!!

❖ चंद्रसेन 'विराट',

समय, १२१, वैकुण्ठधाम कॉलनी, ओल्ड पलासिया, खजराना कोठी, आनंद बाजार के पीछे, इंदौर - ४५२०१८

* मनमोहन आवरण से सजी कथाबिंब (अप्रैल-जून २००७) मिली। ज्वलंत मुद्दे पर आपका बेबाक संपादकीय। संपूर्ण विश्व को अब परमाणु अप्रसार की ओर आगे आना चाहिए। जिससे विश्व शांति कायम की जा सके। इस अंक में काव्य पक्ष ज़्यादा सशक्त है। कहानियों में 'सुबह' गजेन्द्र रावत की कहानी आधुनिक जीवन की त्रासदी को बखूबी उकेरती है। लघुकथाओं में 'दंश' एवं अविश्वास अच्छी हैं। 'नमस्कार' लघुकथा में के.पी.जी आखिर कहना क्या चाह रहे हैं। समझ से परे है।

❖ अर्जुन सिंह 'अंतिम'

झाबुआ-धार क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, टवलर्ड, मनावर, धार-४५४४४१

* वर्षों से 'कथाबिंब' हिंदी के प्रचार-प्रसार का पुनीत कार्य करती आ रही है। अपने नाम के अनुरूप यह पत्रिका कथा-लेखन में नवीनता व निखार लाने के लिए नये और पुराने कहानीकारों का मार्गदर्शन करती आ रही है या यूँ कहें कि कथा-लेखन में नये-नये तकनीकों के विकास करने का सफल प्रयास करती आ रही है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

मुझे तीन-चार साल पहले 'कथाबिंब' का एक अंक देखने का मौका मिला था किंतु कतिपय कारणों से इस पत्रिका की जो मुहिम चल रही है उससे नहीं जुड़ सका। अब मैं भी इससे जुड़ना चाहता हूँ।

❖ मुकुंदलाल

डीपूगढ़ा, शिवमंदिर के पास, हजारीबाग (झारखंड)-८२५३०१

* 'कथाबिंब' के अप्रैल-जून .०७, अंक में आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में संयोजक के द्वारा आमंत्रण के बावजूद डॉ. पी. जयरामन के द्वारा जिस तरह आपको अपमानित किया गया, वस्तुतः वह न केवल एक छोटी पत्रिका के संपादक का अपमान है बल्कि एक अहिंदी भाषी प्रदेश में २८ वर्षों से कार्यरत एक हिंदी सेवी का भी अपमान है। संपूर्ण हिंदी साहित्य को आपके इस अपमान की भर्त्सना करनी चाहिए।

सागर-सीपी से इस बार जो अनमोल रत्न आप ढूँढ़ कर लाये हैं उस पर पहले हिंदी साहित्य में पर्याप्त ध्यान नहीं दिया, यह हमारे लिए क्षोभ और चिंता का कारण है। संतोष श्रीवास्तव हमारे समय की वरिष्ठ लेखिका हैं लेकिन इनकी उपेक्षा हैरान करती है। छोटे-मोटे पुरस्कार तो इन्हें अनेक मिले हैं लेकिन साहित्यकार को जब तक पद्मश्री और साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिलते, उसे मोक्ष नहीं मिलता। हर दृष्टि से यह साक्षात्कार दिलचस्प है। खासकर उनकी स्वीकारोक्ति कि इस उम्र में भी मुझसे इश्क लड़ाने को लोग लालायित हैं। नाम नहीं बताऊंगी पर ऐसे तीन प्रतिष्ठित साहित्यकार के नाम हैं? जब इतना सब कुछ बता दिया तो आखिर नाम बताने में हर्ज क्या था? वैसे भी इस क्रांतिकारी लेखिका में ऐरे गैरे नहीं, प्रतिष्ठित साहित्यकार उत्सुक होंगे। यहां लोग कयास लगा रहे हैं कि तीन प्रेमियों से एक तो दिल्ली के कथा मासिक का संपादक है दूसरा शायद मुंबई का साहित्यकार है और तीसरा विदेशी साहित्यकार। अब तो उनके स्पष्टीकरण के बाद ही राज खुलेगा कि वह भाग्यवान प्रेमी कौन हैं? हिंदी में तो लोग ६५-७० के बाद भी लेखक, लेखिका लिखिग इन में विश्वास करते हैं, इससे अकेलापन भी कटता है और रचनात्मक ऊर्जा भी मिलती है।

कुल मिलाकर यह अंक बहुत अच्छा है और दिल्ली में इस अंक की चर्चा है। 'मालवगढ़ की मालविका' सचमुच अच्छा उपन्यास है लेकिन हिंदी में इसकी चर्चा नहीं हुई।

❖ साधना अग्रवाल,

४-सी, एन्वलेव, मयूर विहार फेज-१, दिल्ली-११००९१

* 'कथाबिंब' अप्रैल-जून ०७ अंक प्राप्त. सभी कहानियां और लघुकथाएं अच्छी लगीं. कविताओं में डा. वरुण, बिल्थरेजी और डॉ. पाठक ने अधिक प्रभावित किया. 'राष्ट्रघाती विपन्नता' जैसी कविता को प्रकाशित करने के लिए आप धन्यवाद के पात्र हैं. क्योंकि ऐसी कविताएं बड़ी पत्र-पत्रिकाओं में कम ही प्रकाशित होती हैं. अनेकों कवि न चाहते हुए भी गद्य कविता लिखने को मजबूर हैं. काव्य की सभी विधाओं को स्थान मिलना चाहिए. इससे पत्रिका का अंतः सौंदर्य और अधिक निखरेगा.

'वातायन' में हिरोशिमा और नागासाकी के बारे में पढ़कर और 'पीस मेमोरिल म्यूजियम' का चित्र देखकर व्यथित हूं. आज मानव के हितार्थ परमाणु बम रहित विश्व की आवश्यकता है जो अमेरिकी दादागिरी के कारण संभव नहीं प्रतीत होता. संपादकीय में आपने 'भारत-अमेरिकी परमाणु संधि' पर जो बातें की हैं उन पर चिंतन मनन की आवश्यकता है. यह सत्य है कि अमेरिका भारत का मित्र नहीं है और न ही व कभी भी भारत का शुभचिंतक हो सकता है. अतः भारतीय नेताओं को काफ़ी सोच समझ कर कदम उठाना चाहिए. कहीं ऐसा न हो कि हम अपने हाथों ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार लें और विकलांग बनकर वैसाखी के लिए भी अमेरिका का मुंह ताकते रहें. इस अंक के आवरण पृष्ठ के विविध पुष्पों ने मन मोह लिया. आवरण पृष्ठ पर रचनाकारों का नाम प्रकाशित नहीं करें तो ही अच्छा. पुस्तक समीक्षा अंत में प्रकाशित होनी चाहिए. सभी लघुकथाएं एक जगह और कविता, गीत, गज़ल, दोहे इत्यादि एक जगह प्रकाशित करने का प्रयास करें.

❖ राजीव नयन तिवारी,

कार्या. संयुक्त निबंधक, सहयोग समितियां,
दुमका(झारखंड)-८१४१०१

* नियमित रूप से 'कथाबिंब' के अंक मिल रहे हैं. अप्रैल-जून ०७ अंक आद्योपांत पढ़ा. संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' लाजवाब है. यह पत्रिका के सार को कह देता है. सुंदर संपादकीय एवं अविरामगति से २९ वें वर्ष में पत्रिका के प्रवेश हेतु विशेष शुभकामनाएं.

अंक की सभी कहानियां अच्छी हैं किंतु चंद्रमोहन प्रधान की कहानी 'भवानी का ब्याह' सबसे अच्छी लगी. लाचार पिता गलत निर्णय ले सकता है, किंतु भवानी जैसी लड़की साहस का जौहर दिखाकर शिबू भगत जैसे कमीने व्यक्ति को सबक सिखा सकती है.

'सागर-सीपी' के अंतर्गत कथा लेखिका संतोष श्रीवास्तव की विशेष भेंटवार्ता भी प्रभावित करती है.

'सिर्फ़ देखे जो बुराई वो नज़र मत देना, बद्दुआ निकले तो लफ़्ज़ों में असर मत देना', राजेंद्र तिवारी की गज़ल की ये पंक्तियां भी प्रभावित करती हैं.

❖ मनानंद 'हर्ष'

हर्ष - निवास, शिवनगर, भवानीपुर - राजधाम (बिहार) ८५४२०४

* 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून ०७ का अंक पढ़ने को मिला. कथा प्रधान होकर भी पत्रिका कहानियों के साथ ही लघु कथाएं, कविताएं, गज़लें, समीक्षाएं और भेंट वार्ताएं प्रस्तुत कर पत्रिका को बहिर्मुखता प्रदान करती है.

देवेंद्र पाठक 'महरूम' व डॉ. सुरेंद्र वर्मा की गज़लें काफ़ी जज्बाती हैं, लघुकथा 'अविश्वास' (क्रमल चोपड़ा), कहानी 'सुबह' श्री गजेंद्र रावत, 'रद्दी' (गोविंद उपाध्याय), भवानी का ब्याह (चंद्र मोहन प्रधान) काफ़ी प्रभावी हैं. 'सागर सीपी' के अंतर्गत श्रीमती संतोष श्रीवास्तव की भेंटवार्ता महिला सशक्तिकरण की उत्तम मिसाल है, कितनी गहराई है उनकी लाइन में, 'तू पंख ले ले, मुझे हौसला दे दे, फिर आंधियों को मेरा नाम और पता दे दे.' यही नहीं पूर्णतया सत्य है उनकी बात - कलम से बढ़कर अपने उबाल को शांत करने का और कोई जरिया नहीं. साथ ही आपकी कलम की करामात 'कुछ कहीं, कुछ अनकहीं' गहरे पानी में पैठ कर मोती निकालने की सफल कोशिश है. आप व पत्रिका में शामिल सभी साहित्यकार बधाई के पात्र हैं जो साहित्य जगत में अपनी कलम की ऊर्जा से रोशनी बिखेर रहे हैं.

❖ राम किशोर कपूर 'किशोर',

४० चौकसी नाथ मार्ग, शाहजहांपुर (उ.प्र.) २४२००१

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता, पीन कोड सहित साफ-साफ लिखें. मनी ऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लाजू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

बदमाश आदमी

कोढ़ में खाज की भांति टपका था मुन्ना! अब तो दरवाजे पर दस्तक होते ही श्रीनाथ का रक्तचाप बढ़ जाता था. मस्तिष्क का सारा तनाव चेहरे पर उतर आया था...पता नहीं इस बार क्या कहेगा मुन्ना!

श्रीनाथ की पत्नी अनुराधा की घनिष्ठ सहेली का देवर था मुन्ना. किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी में उच्चपदस्थ मुन्ना के पिता ने अपने सुपुत्र के लिए बढ़िया नौकरी की व्यवस्था कर ली थी. अब बस मुन्ना के ग्रेजुएट हो लेने की कसर थी.

पिछले वर्ष मुन्ना पांचों विषय में असफल रहा था फिर भी श्रीनाथ ने मुन्ना के चेहरे पर असफलता, लज्जा या पश्चाताप का भाव कभी नहीं देखा था. इस वर्ष मुन्ना के पिता अपने बेटे को येन-केन प्रकारेण उत्तीर्ण देखना चाहते थे.

पर्चे समाप्त होते ही मुन्ना जॉक की भांति श्रीनाथ से आचिपटा था तो श्रीनाथ को मुन्ना के लिए पैरवी करने की हामी भरनी ही पड़ी थी. मुन्ना ऑनर्स का परीक्षाफल प्रथम श्रेणी में पाने का इच्छुक था परंतु श्रीनाथ ने पाया था कि ऐसा कतई संभव न था. दो विषयों में मुन्ना की उत्तर पुस्तिकाएं निरी कोरी थीं. एक विषय में मात्र दो प्रश्न. शेष दो में ठसाठस भरी कॉपियों पर सारे उत्तर ऊल-जलूल!

हीरालाल इंटर कॉलेज के गणित शिक्षक श्रीनाथ पांडेय अपनी राक्षसी कार्यक्षमता के कारण कॉलेज में कंप्यूटर बाबा भी कहे जाते हैं. प्राचीन गणित की लुप्तप्राय मापक प्रणालियां सवैया-ढैया-कनवां-छटांक-कट्टा-धूर में बात करने वाले श्रीनाथ कभी नामांकन प्रभारी, कभी खेल प्रभारी या कभी मूल्यांकन-वीक्षण में अवश्य जुड़े रहते हैं. एक बार तो कॉलेज की बरसाती झाड़-झंखाड़ की सफ़ाई का बीड़ा भी उठा लिया तो श्रीनाथ के परम मित्र बलराज मिश्र ने उन्हें घसकट्टा बाबा कहना शुरू कर दिया. नवीन नामकरण सुन मुसकाते श्रीनाथ ने टिप्पणी की, “बलरजवा की बात और घोड़े की पाद बराबर है. उसका खुद का नाम ही एक अपभ्रंश है. नंदी का कलजुगी अवतार है वह! बैलराज का अपभ्रंश है बल राज....”

श्रीनाथ के बेलौस अखड़पन, भोजपुरी मिश्रित कचराही हिंदी और सनकी सिद्धांतप्रियता के कारण सहकर्मी तो तर्क-वितर्क से कतराते ही थे, स्वयं प्राचार्य भी श्रीनाथ के मुंह नहीं लगते थे.

अध्ययन-अध्यापन-परीक्षाओं के दौरान महंगाई भत्ते या बकाया पर गपियाते शिक्षक, शिक्षण से अधिक ट्यूशन-वीक्षण के प्रति प्रतिबद्ध सहकर्मी, कोचिंग प्रिय भगोड़े साथियों पर श्रीनाथ की टिप्पणियां अत्यंत मारक होती थीं.

जब बिहार में ‘दस जमा दो’ शिक्षा प्रणाली लागू हुई तो श्रीनाथ के उद्गार थे, “कुशिक्षा नीति...अशिक्षा नीति, अब यह ‘टेन प्लस टू’ की नयी शिक्षा नीति. शिक्षा तो प्रयोगों से ही तबाह हुई जा रही है. हर नयी सरकार ससुरी नयी किताब

॥ राकेश कुमार सिंह ॥

लिखवाने लगती है. एक बार हमें शिक्षा मंत्री बना दे कोई, सारा पचड़ा ही खत्म कर दें हम.”

“सो कैसे?” कोई चुटकी लेता.

“पढ़ लिख कर क्या होना है? देश को कंप्यूटर लेबर चाहिए या सेल्समैन. कॉलेज में सावधि इंदिरा विकास पत्र या राष्ट्रीय बचत पत्र की तरह पूरी फीस एकमुश्त जमा करवा लेता. सेशन पूरे होते ही परिपक्वता राशि की जगह सीधे डिग्री ही थमा देता. लो बेटा, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में चाकरी खोजो या भीख मांगो. लूटमार करने का कलेजा न हो तो नेतागिरी ही कर लो. गधे-खच्चरों के गले में भी पी.एच.डी.का पट्टा लटकवा कर छोड़ता....जाओ पूरा देश ही चर जाओ पट्टे....”

जब तक श्रोताओं के गगनभेदी ठहाके प्राचार्य कक्ष तक पहुंचते, श्रीनाथ वैकल्पिक योजना प्रस्तुत कर चुके होते, “या फिर ‘काटो-साटो प्रणाली’ ही लागू कर देता.”

“माने?” पूछा जाता.

“हिसामुक्त परीक्षा, वीक्षण खर्च समाप्ति, मसि-कागद को भी अप्रासंगिक बना देता. हर परीक्षार्थी को परीक्षा भवन में दस-बीस किलो पुस्तकें और गोंद-कैची के साथ प्रवेश अनिवार्य

होता. पर्चा मिलते ही पुस्तकों में उत्तर ढूंढो, कैंची से कर्क-कर्क पृष्ठ काटो और उत्तर पुस्तिकाओं पर सटासट चिपका दो. मूल्यांकन भी सरल....”

आंतों में बल पड़ने तक हंसी के फव्वारे उड़ते रहते.

शिक्षाप्रणाली के खोखलेपन, शिक्षकों की मूल्यहीनता, छात्रों के पतन आदि पर श्रीनाथ का आक्रोश व्यंग्य-लक्षणा-अभिधा में फूटता रहता. अगड़धन्न और बौड़म सुझावों के द्वारा वे आधुनिक शिक्षा पद्धति को गलियाते रहते.

वे जो श्रीनाथ से खार खाते थे, उन शिक्षकों की दृष्टि में श्रीनाथ आदर्शों, मूल्यों, समयबद्धता और एक शिक्षक की स्वस्थ परंपराओं के प्रति झक्रीपन की हद तक जुड़ाव रखते थे अतः दिमागी रूप से बीमार व्यक्ति थे.

.....और इसी बीमारी ग्रस्त श्रीनाथ के जीवन में कोढ़ में खाज की भांति दाखिल हुआ था मुन्ना.....

“बिहार विद्यालय परीक्षा समिति” ने श्रीनाथ को शहर के कुछ परीक्षा केंद्रों का पर्यवेक्षक नियुक्त कर दिया था. इनमें से एक श्रीनाथ का अपना कॉलेज भी था. स्वच्छ एवं मर्यादित परीक्षा संचालन का बीड़ा उठाये श्रीनाथ प्रातः से सायं तक नीलगाय की भांति परीक्षा केंद्र रौंदते फिर रहे थे.

रोज सुबह-सुबह आ धमकता था मुन्ना....सूदखोर पठान की भांति. जवाब तलब करता था कि श्रीनाथ ने उसके किन-किन परीक्षकों से संपर्क किया और किस विषय में कितने अंक दिलवा सके. श्रीनाथ प्रतीक्षा करते रहते कि अंगद का पांव बने मुन्ना के मुंह से कब फूल झड़ें... “अच्छा मौसा जी, अब मैं चलता हूं.”

घूंट-घूंट क्रोध घोंटते श्रीनाथ नित्यक्रिया तक स्थगित कर अपराधी भाव से मुन्ना को सफ़ाइयां देते. मुन्ना के प्रति कटु होने से सायास बचते क्योंकि तब अनुराधा के नाराज़ होने का भय था. घर की शांति भंग होने का खतरा था. ताने.... “मेरी एक सहेली का काम नहीं कर रहे हो फिर मैं आपके निठल्ले मित्रों की जूठी प्यालियां क्यों धोती रहूं?”

फिर तो मृगनयनी अनुराधा द्वारा तैयार सुबह की पहली ही चाय को सहस्रचंडी पत्नी की एक ही फुंकार से करैले के सूप में बदल जाना था.

मुन्ना से भिन्नाये श्रीनाथ परीक्षाओं में कदाचार देख और दहकने लगे थे और एक सुबह तो मुन्ना ने भी हद ही कर दी. बोला, “कोई कसर न रहे. इस बार तो आपको मुझे पास कराना ही होगा मौसाजी, प्रैक्टिकल में तो एक्सटरनल की बांह उमेठ कर पचास में



रा. सु. का. र. र.

२० फरवरी १९६०, ग्राम गुरहा,
जिला पलमू (झारखंड)

स्नातकोत्तर (रसायन विज्ञान) एवं विधि स्नातक .

प्रकाशन : कथा संग्रह : ‘हांका और अन्य कहानियां’, ‘ओह पलामू...!’, ‘जोड़ा हारिल की रूपकथा’, उपन्यास : ‘जहां खिले हैं रक्तपलाश’, ‘पठार पर कोहरा’, ‘जो इतिहास में नहीं है’, ‘साधो, यह मुर्दों का गांव’ (यंत्रस्थ).

किशोर उपन्यास : ‘केशरीगढ़ की काली रात’, ‘वैरागी वन के प्रेत’, ‘नीलगढ़ी का खजाना’ (सृजनाधीन). ‘कहानियां ज्ञान की विज्ञान की’ के अतिरिक्त झारखंड के इतिहास और संस्कृति पर ‘आदिपर्व’, ‘उलगुलान’, ‘अग्निपुरुष’, ‘अरण्य कथाएं’ तथा ‘अवशेष कथा’ नामक पुस्तकों की श्रृंखला .

अन्यान्य : झारखंड का प्रतिष्ठित ‘राधाकृष्ण सम्मान’ (२००४), सागर-मध्यप्रदेश-का ‘दिव्य रजत अलंकरण’ (२००२), ‘कथाक्रम कहानी प्रतियोगिता’ (२००१), ‘कथाबिंब’ कहानी प्रतियोगिता (२००२) तथा ‘कथाक्रम कहानी प्रतियोगिता’ (२००२) तीनों में प्रथम पुरस्कार.

संप्रति : हरप्रसाद दास जैन महाविद्यालय, आरा में शिक्षण.

उनचास ले ही लूंगा. वर्ना बेइज्जत हो कर मेरे कॉलेज से निकलेगा एक्सटरनल . बस आप थ्योरी में खींच लीजिए हमको.”

“लेकिन दो पेपर्स में तो तुमने कॉपियों में एक लकीर तक नहीं खींची. तुम चाहते हो कि मैं तुम्हारी कोरी कॉपियों में अंक

दिलाने को परीक्षक की चौखट पर नाक रगड़ूं. यह बेहयाई मुझसे नहीं होगी.”

“तो एकजामनर को रुपये.....जितने कहिए दूंगा.” मुन्ना हंसकर बोला - “यूनिवर्सिटी में तो हजार-पांच सौ खर्च करने पर टेबुलेटर लोग पांच को पचास बना देते हैं.”

जानते थे श्रीनाथ कि मुन्ना तो पकती हांडी का एक दाना था. कई-कई मुन्ना नकल-पैरवी के चोर-दरवाजे से शिक्षा मंदिरों में प्रवेश कर प्रोफेसर-रीडर की गद्दियां हथियाये बैठे थे. वे पांच के प्रासांक को निश्चय ही पचास कर सकते थे. दूसरी ओर हताश, निराश और कुंठित सच्चे विद्यार्थी अनिश्चित भविष्य को मुट्ठियों में भींचे, असमय की बुजुर्गी ओढ़े, अपने अभिभावकों एवं समाज की कटुक्तियों से दंशित होने को अभिशप्त हैं. श्रीनाथ जैसे लोग अंधी गली में भटकते निरुपाय छात्रों की भयावह दुर्दशा देख किंकर्तव्यविमूढ़ हैं.

मच्छरों की भांति निडर और खटमलों की भांति बेशर्म था मुन्ना. हतप्रभ श्रीनाथ आंखें फाड़े भारत के भविष्य को ताके जा रहे थे. मुन्ना की बात मानो वह लात थी जिसने श्रीनाथ को तंदूर में धकेल दिया था.

सचमुच परंपराएं कभी नहीं मरतीं. बस इनके स्वरूप बदलते रहते हैं. यह शिक्षा को व्यवसाय में बदलने वाले, विद्या को प्रतिशोध के हथियार के रूप में ढालने वाले और अपने शिष्यों के लिए दूसरे प्रतिभाशाली का अंगूठा कटवा लेने वाले द्रोणाचार्य की परंपरा का अराजक विस्तार ही तो है जिसने मुन्ना जैसे छात्रों को जन्म दिया है.

तंदूर में भुनते श्रीनाथ चीख उठे थे, “मुझे दलाल समझ रखा है तूने? अभी से घूस देने-लेने की बात....निकल...निकल जा मेरे घर से. तेरे जैसे छात्रों ने ही कॉलेज-छात्रावासों को गुंडों का अड्डा बना रखा है.”

मुन्ना ग़ज़ब का धैर्यवान निकला. शाइस्तगी से चाय खत्म करता हुआ बोला, “आपसे मिलना बेकार गया. समय बर्बाद हुआ. मुझे खुद ही एकजामनर से मिल कर रिक्रेस्ट करना चाहिए था.”

क्रोध से कांप रहे थे श्रीनाथ. होंठों पर व्यंग्य भरी मुस्कान लिये पास आया था मुन्ना. आते ही कभी जिसने पैर छुये थे, जाती बार घुटनों तक ही झुका था.

मुन्ना के जाने के बाद श्रीनाथ ने हारे हुए युद्ध अपराधी की भांति पत्नी से कहा था, “मैं बड़ा नालायक आदमी हूं अनु.

एकदम नाकारा. जो आदमी इस लुच्चे समय में एक फेल छात्र को पास न करा सके वह निकम्मा ही तो.... मुन्ना इस वर्ष भी फेल ही होगा. तुम्हारी सहेली तुम्हें ताने देगी. तुम मुझे दे डालो....”

ऐसी सत्यानाशी मनःस्थिति में परीक्षाओं के संबंध में जो रिपोर्ट श्रीनाथ ने विश्वविद्यालय को भेजी थी उससे मानो भूचाल आ गया था. गोपनीय लिफाफे के खुलते ही लगा शांत झील में कंकड़ नहीं कोई शिला ही फेंक दी गयी थी.

भ्रष्टाचार मुक्त परीक्षा के सरकारी दावों की धज्जियां उड़ती श्रीनाथ की रिपोर्ट से ऐसी खलबली मची थी कि रात सात बजे विश्वविद्यालय के परीक्षा विभाग में एक आपात बैठक बुला डाली गयी थी ताकि श्रीनाथ से खतरनाक रिपोर्ट लिखने हेतु स्पष्टीकरण तलब किया जा सके. ताकि श्रीनाथ को अगली सुबह अपनी रिपोर्ट को इंटरमीडियट शिक्षा परिषद भेजने से रोका जा सके. कम से कम इस रिपोर्ट को ‘डायल्यूट’ तो अवश्य ही कराया जा सके.

मुन्ना से खिन्न, परीक्षाओं के पतन और अपने सिद्धांतों से विवश श्रीनाथ ने तीखी रपट तैयार कर डाली थी और अब तुणीर से निकाला तीर वापस तुणीर में रखने को राजी नहीं थे श्रीनाथ.

आपात बैठक में पहला सवाल परीक्षा नियंत्रक ने ही किया था, “स्कूलों तक तो ठीक था पर आपने तो अपनी यूनिवर्सिटी के कॉलेजों को भी लपेट लिया है अपनी खतरनाक रिपोर्ट में...?”

“जो हुआ सो ही लिखा है मैंने.”

“अपने कॉलेज का भी खयाल नहीं किया आपने?” हीरालाल इंटर कॉलेज के प्राचार्य भी बैठक में मौजूद थे.

“महोदय, आपने मुझे ऐसे लिफाफों पर दस्तखत करने को कहा जो पता नहीं कब के खुले पड़े थे जबकि नियम है कि प्रश्नपत्रों के लिफाफे परीक्षा समय से पंद्रह मिनट पहले खुलने चाहिए. तुरा यह कि दूसरी पाली की परीक्षा के प्रश्नपत्र भी पहली ही पाली में खोल डाले गये थे.

“करेक्शन प्लीज....!” परीक्षा नियंत्रक मुसकाए थे- “लिफाफे खोल नहीं डाले गये थे बल्कि गलती से खुल गये थे. यह एक सामान्य मानवीय भूल थी.”

“जो भी था, केंद्राधीक्षक और परीक्षा नियंत्रण कक्ष के लोगों के सामने पर्चा तो लीक हो चुका न?

श्रीनाथ के भीतर ईमानदारी, प्रतिबद्धता और कर्तव्यनिष्ठा के जरासीम कुलबुला रहे थे. उनके अपने प्राचार्य भिन्ना उठे.

“आप तो बाल की खाल उतारने पर तुले हैं पांडे जी. मेरे

कर्मचारी विश्वस्त हैं और भला मैं पर्चा लीक करूंगा?”

“क्यों...? आपके कर्मचारी फ़रिश्ते हैं? आप कोई देवता पुरुष हैं?”

मंत्रणा कक्ष की दीवारों तक पर आश्चर्य पुत गया. चार जोड़ी आंखें एक दूसरे से टकराने लगीं. श्रीनाथ के सामने वाली हर आंख में आश्चर्य था कि बड़ों के मंतव्य, वह भी इतने संवेदनशील मसले पर, बूझने के बावजूद श्रीनाथ चौंधिया क्यों नहीं रहे?

उधर श्रीनाथ प्रतिकुलपति के वेतन के बारे में सोच रहे थे. जो अभी-अभी कमरे में झांक कर गये थे. ‘वर्साची’ का सूट कैसे अफोर्ड कर पाते हैं प्रतिकुलपति ? या सामने बैठे परीक्षा नियंत्रक कैसे अफोर्ड कर पाते हैं ‘जोडियाक’ का रूमाल और ‘ऑकले’ की टाई? ‘पार्कर’ के सुनहरे निब वाली कलम?

“आपने लिखा है कि परीक्षाकेंद्रों पर कदाचार के हर संभव तरीके अपनाये गये? एक भी अपवाद नहीं मिला आपको?”

“जी नहीं.”

और यह क्या है कि कुछ परीक्षार्थी उत्तरपुस्तिकाओं के साथ परीक्षा भवन से अनुपस्थित पाये गये जबकि परीक्षा के बाद उत्तर पुस्तिकाओं की संख्या पूरी पायी गयी?” परीक्षा नियंत्रक ने पूछा.

“जी.....मेरे पास इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं.”

“और कुछ....?”

“नोट्स या पुर्जों से नकल तो आम बात थी. कुछ केंद्रों पर तो पुलिस अफसर और होमगार्ड के जवान ही छात्रों तक हल पहुंचा रहे थे.

“क्यों?”

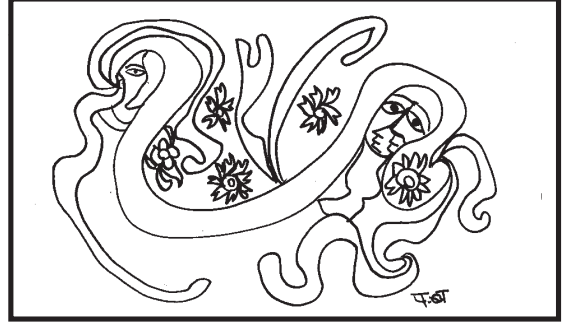
“अफसर क्यों, सो मैं नहीं जानता पर होमगार्ड्स तो बेचारे दस-बीस रुपयों के लिए हीऔर तो और स्वयं वीक्षक भी यही कर रहे थे. यह परीक्षा के नाम पर भोंडा तमाशा है. मेधावी छात्रों के भविष्य के साथ क्रूर खिलवाड़...”

“एनफ.....!” परीक्षा नियंत्रक झुंझला गये.

“पांडेय जी, ज़रा सोचिए. इस रिपोर्ट से आपके कॉलेज की नेकनामी पर भी कालिख पुत जायेगी.” श्रीनाथ के प्राचार्य ने कहा.

“यह आपकी समस्या है, मेरी नहीं.”

श्रीनाथ ने देखा, प्राचार्य का चेहरा फक्क पड़ गया था. बुद्धिजीवी कहलाने वालों का लिजलिजापन उजागर हो रहा था. गंदगी ढकने की रक्षात्मक मुद्राएं, शिक्षा-व्यवस्था के भव्य मंदिरों



के दीमक लगे जर्जर खंडहर, बदरंग कंगूरे, व्यवस्थापकों की नपुंसकता और परीक्षा के सार्थवाहों की नीरीहता ...सब कुछ स्पष्ट था.

“हम भी कदाचार मुक्त परीक्षाएं चाहते हैं पांडेजी,” नियंत्रक गंभीर थे -” पर सख्ती करें तो छात्र हिंसक हो उठते हैं. तोड़-फोड़, आगजनी, शिक्षकों पर हमले...हम पर शांतिपूर्ण परीक्षाएं निपटाने हेतु दबाव पड़ते हैं...क्या करें हम भी?”

“कटु फैसले लेने से न डरें.”

“पूरी युवा पीढ़ी को आज की राजनीति ने वोट-बैंक में बदल डाला है. हर पॉलिटिकल पार्टी समर्थित छात्र संगठन हैं, जिन्हें भड़काते हैं राजनेताफिर हम अपनी बलि क्यों दें?”

“अपनी कमजोरी को किसी और पर न आरोपित करें महोदय. शांतिपूर्ण परीक्षा की आपकी अवधारणा से मैं कतई सहमत नहीं. यदि मेरा स्पष्टीकरण समाप्त हो चुका हो तो कृपया मुझे अनुमति दें.”

कमरे में मौन छा गया. कमरा बेहद छोटा और संकरा हो उठा. श्रीनाथ को कमरे का वातावरण घुटन और संझांघ से भरा लगने लगा. वे उठे. मौन को स्वीकृति मानते हुए उठे और धन्यवाद ज्ञापित करते हुए कमरे से बाहर निकल पड़े.

पीछे धीरे-धीरे बंद होते स्प्रिंगदार दरवाज़े के पीछे से फुत्कार सी फूटी..... “बदमाश आदमी है यह... दिमाग के पेंच ढीले....”

“युवा पीढ़ी की तबाही की फिक्र है इसे...अंधे को अपनी तबाही नहीं दिख रही...”

“दिखेगी....दो दिन में ही....”

विश्वविद्यालय परिसर से बाहर निकलते श्रीनाथ सोच रहे थे, गांव में महिलाएं मुंह अंधेरे में पंक्तिबद्ध बैठी राह-पगडंडियों के आजू-बाजू शौच निपटाती रहती हैं. आहट पाते ही झट अपनी साड़ियों से अपने चेहरे ढकने लगती हैं स्त्रियां, न कि अपने निरावृत

अंग. केंद्राधीक्षक और परीक्षा विभाग के अधिकारी भी अपने चेहरे ढकने का ही उपक्रम कर रहे थे. पूरे राज्य में परीक्षाओं की जब यही स्थिति थी तो छुपाने को क्या था? बस अपना चेहरा ही तो....?

श्रीनाथ की विस्फोटक रिपोर्ट के सदके अगली सुबह के स्थानीय समाचार पत्रों में अधिसूचना प्रकाशित हो गयी थी....“अपरिहार्य कारणों से अमुक से तमुक तिथियों की फ़लां-फ़लां केंद्रों की परीक्षाएं रद्द की जाती हैं. नयी तिथियों की घोषणा शीघ्र की जायेगी.”

श्रीनाथ संतुष्ट हुए थे. उन्होंने अपना काम कर दिया था. उनकी ईमानदारी, निष्ठा और कर्तव्यपरायनाता का सिला मिल गया था परंतु उसी शाम बलिराज मिश्र ने श्रीनाथ के माथे पर बम पटक दिया था, “बोरिया-बिस्तर बांधो पांडे. अब शहर से दूर किसी छात्रहीन कॉलेज में प्रस्थान करो. सुनते हैं तुम्हारा ट्रांसफर लेटर तैयार हो चुका है. कल परसों में तामील भी हो जायेगा.”

बलिराज मिश्र की सूचनाओं को चुटकियों में उड़ाना संभव नहीं था. भिन्ना कर बोले श्रीनाथ, “शिक्षा के हमारे मंदिर कोठों में बदल डाले गये हैं मिसिर. शिक्षा को कोठे की रंडी बना दिया है लोगों ने और हम शिक्षकर्मि बन गये हैं भड़वे. जिसके पास ताकत है वह कोठों, रंडियों और दलालों को खरीद रहा है. मनचाहे ढंग से भोग रहा है.”

शिक्षाव्यवस्था के चक्रव्यूह में विरथ और हथियार हीन खड़े थे श्रीनाथ. प्रहार की प्रतीक्षा करते हुए और ग़ज़ब यह कि वे भयभीत तनिक भी नहीं थे.

“शिक्षा व्यवस्था में तुम जैसे लोग सड़ता कूड़ा हैं भाई. तुम जैसे झकी कूड़े का मुख्यालय से दूर पड़ा रहना ही व्यवस्था के हित में है न?”

बलिराज मिश्र ने श्रीनाथ का कंधा थपथपाया था.

रात को बिस्तर पर लेटे श्रीनाथ सोचते रहे थे, अब जो होना है सो हो पर उनका तबादला ही अंत है इस लड़ाई का या लड़ाई अभी बाकी है? बलिराज की आवाज़ चेतना से पुंछ नहीं रही थी.

“यार पांडे, शिक्षक के अभावग्रस्त जीवन को ही मूल्य और असुरक्षित होते जाते भविष्य को ही उपलब्धि समझकर हम मूर्ख कहीं यूटोपिया में तो नहीं जिये जा रहे? कहीं बेकार तो नहीं चले गये हम ?

✍️ ‘कंचनप्रभा’, जयप्रकाश नगर (कतीरा),
आरा, भोजपुर (बिहार)-८०२३०१
फोन : ९४३१८५२८४४

लघु कथा

अल्ला जाने क्या होगा

✍️ डॉ. तारिक असलम ‘तस्नीम’

सुबह होते ही हवेली में कोहराम मच गया. बड़ी बूढ़ी औरतें जमीला बेगम के पास सिर जोड़कर बैठ गयीं. “अल्लाह यह क्या आफत नाजिल हुई. मुई ने यह क्या किया. कमबख्त को शहर पढ़ने भेजा था या शौक पालने? मिल जाये तो गला दबा दूं बदबख्त का. अल्लाह गारत करे ऐसी जवानी और जवानी की आग को. ऐसी बेटियों को तो जिंदा दफ़न ही करना बेहतर. न रहेंगी मुई, न यह बवाल उठेगा?” बड़ी अम्मा गुस्से से लहराती धम्म से ज़मीन पर बैठ गयीं.

अब तक चुप रही कासिम बीबी पूछ बैठीं, “मगर यह सब हुआ कैसे? घरवालों को कैसे खबर न हुई? उसके तौर तरीके से फ़र्क नहीं मालूम पड़ा. हमारे ज़माने में तो पैर की चाल से लोग समझ जाते थे कि इसके इरादे क्या हैं?”

“अरे बहन. अब न मालूम हुआ है. यह चक्कर साल दो साल से चल रहा था. फोन भी आते थे घर पर. पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया.”

“घर से भी कुछ ले गयी है क्या?”

“अब क्या बतायें. मां, भाभी और ननद के गहने. जमा पूंजी सब लूट ले गयी. अपने यार की खातिर. ये लोग शादी में गये थे, वह अकेली थी जो रात को मार्शल लेकर आया और साथ ले गया.”

अब बड़ी बी कहने लगीं, “अब थाना पुलिस बुलाकर भी क्या होगा? दोनों बालिग हैं. शादी कर ली होगी. मेरा तो दिल रो रहा है मगर करूं तो क्या करूं?”

“जाने दीजिए. लड़का मुसलमान ही है न किसी हिंदू के साथ तो नहीं भागी न. मगर हमारा ज़माना होता तो पूरे शहर में दंगा हो गया होता. समझ गयी न?”

“ऐसा क्या?”

“भई. लड़का तो सुन्नी फिरके का है न क्यों? शिया तो नहीं.”

“सो तो है, पर लोग बदल रहे हैं न ज़माना तो अपनी जगह पर ही है.”

लेखनी प्रकाशन, २/६ हारून नगर, फुलवारी
शरीफ, पटना - ८०१५०५

नौ चौदह की लोकल

“कृपया सभी यात्री ध्यान दें! अंबरनाथ से चलकर छत्रपति शिवाजी टर्मिनस की ओर जाने वाली ९:१४ की ट्रेन अपने निश्चित समय से १५ से २० मिनट देरी से प्लेटफॉर्म नं. २ पर आ रही है.”

प्लेटफॉर्म पर उद्घोषणा हो रही है.

प्लेटफॉर्म लोगों से खचाखच भरा है. कुछ लोग अखबार पढ़ने में मशगूल हैं तो कुछ लोग मोबाइल से बात कर रहे हैं. किंतु सभी का ध्यान उस ओर ही है, कुछ यात्री लचक-लचक कर उस ओर देख रहे हैं, जिस ओर से ट्रेन आने वाली है. इंडिकेटर पर लाल अक्षरों में ९:१४ सीएसटी चमक रहा है.

एकाएक लोगों को आभास हुआ कि जैसे ट्रेन आ रही हो. सभी लोग सतर्क हो गये. कोई काका अपना चश्मा ठीक कर रहे हैं तो कोई भाई साहब अपनी अटैची को संभाल रहे हैं. युवाओं ने कंधे पर टंगे बैग को ज़ोर से पकड़ा तो कुछ लोगों ने अखबार के पुलिंदों को समेटा. काकी ने भी छोटे पर्स को बाहों के नीचे दबाया, कैरी बैग को हथेली में पकड़ा. लगभग सभी महिला यात्रियों के पास पर्स के साथ, एक-दो प्लास्टिक की थैलियां थीं. काकी के बगल की लड़की ने नीचे खिसकती पैंट को थोड़ा ऊपर उठाया, टी-शर्ट को नीचे खिसकाया, पैर के सैंडिल को ठीक किया, गालों पर बिखरे बाल को कान के ऊपर किया, चश्मे को नाक पर चढ़ाया, छोटे से पर्स को संभाला. महिला कोच के पास खड़े यात्री कुछ क्षण आने वाली ट्रेन की दिशा की ओर देख रहे हैं तो कुछ क्षण निकट खड़ी महिलाओं की तरफ देख रहे हैं. महिलाओं के गालों पर पसीना है. वहां लगाया हुआ पाउडर बहा जा रहा है. कुछ के गीले बाल पीठ पर से चिपक गये हैं. तरह-तरह की पोशाक धारण किये हुए महिलाएं खड़ी हैं. कुछ युवा यात्री अपनी जूल्फों में कंधी कर रहे हैं तो कुछ फ़िल्मी गानों के ज़रिये युवतियों को प्रभावित करने का प्रयास कर रहे हैं. कुछ यात्री मोबाइल के एफ.एम. की धुन पर मटक रहे हैं.

लगेज डिब्बे के पास क्राफ़ी समय से सिर पर सामान लादे लोग खड़े हैं. किसी के सिर पर बड़ी सी टोकरी है तो किसी के सिर पर बड़ा-सा डिब्बा. गर्मी बहुत है, सभी पसीने से तर हैं.

ज़ोर की आवाज़ के साथ लोकल ट्रेन की बजाय एक मेल

ट्रेन प्लेटफॉर्म से सनसनाती हुई निकल जाती है. सभी यात्री थोड़ा पीछे खिसक जाते हैं. वैसे ही जैसे किसी बल्लेबाज के सामने से बाउंसर गेंद आ जाये, तो वह उससे अपने को अलग कर लेता है. तेज़ी से गेंद विकेटकीपर की तरफ़ चली जाती है. ठीक वैसे ही लोकल स्टेशन पर मेल ट्रेनों के आने पर होता है. पूरी तरह से तैयार यात्री विश्राम की अवस्था में आ जाते हैं. कुछ लोग बार-बार कलाइयों में बंधी घड़ी में समय देख रहे हैं. तो कुछ लोग मोबाइल

११ डॉ.रमाकांत क्षितिज ११

में भी समय देख रहे हैं. कुछ यात्री स्टेशन पर लगी बंद घड़ी की तरफ़ भी देख रहे हैं.

‘नौ डिब्बा-नौ डिब्बा’ कहते हुए लोग दौड़ रहे हैं. सभी आगे की तरफ़ भागे जा रहे हैं. आने वाली ट्रेन १२ डिब्बों की बजाय ९ डिब्बे की है. लोग आगे की तरफ़ खिसक रहे हैं. ट्रेन अब दिखाई दे रही है. एक बार फिर से लोग एकदम तैयार, बैग, पेपर, चश्मा, पानी की बोतल सब को व्यवस्थित कर रहे हैं. अभी ट्रेन रुकी भी नहीं थी कि कुछ फुर्तिले लोग चलती ट्रेन में सवार हो गये. इन लोगों ने चलती ट्रेन को ऐसे पकड़ा जैसे बगुला पानी में तैरती मछली को पकड़ता है. महिलाएं भी चलती ट्रेन में सवार हो रही हैं. बूढ़ी काकी भी चलती ट्रेन में सवार हुई. ट्रेन प्लेटफॉर्म पर कुछ क्षण के लिए रुकी तो सभी यात्री भीतर जाने का प्रयास कर रहे हैं. खूब धक्का-मुक्की हो रही है. कपड़ों की इस्त्री की ऐसी की तैसी हो रही है. चश्मा बेचारा गिरा जा रहा है. साहब की इनशर्ट आउट हो रही है. किसी और की बांह का पसीना किसी और के चेहरे पर रगड़ा जा रहा है.

कुछ युवा यात्री बाहर खड़े होकर ट्रेन के चलने का इंतज़ार कर रहे हैं. क्योंकि उन्हें चलती ट्रेन में सवार होना है ताकि वे दरवाज़े पर खड़े होकर खुली हवा का आनंद ले सकें. यह आनंद जोखिम भरा है, लेकिन मुंबईकर का जीवन तो खतरों से ही भरा पड़ा है, दरवाज़े पर से गिरने से बच भी गये तो क्या पता भीतर बम ही फट जाये. तब तो जो सीट पर राजा की तरह बैठा है, वह भी मारा जायेगा. अभी कुछ माह पहले ही तो ट्रेन में वह बम वाली घटना घटी थी.

अब ट्रेन ने प्लेटफॉर्म छोड़ना शुरू कर दिया. अभी भी कुछ लोग भीतर आने का प्रयास करते दिख रहे हैं. भीड़ के साथ मैं भी भीतर आ गया हूं. सभी एक-दूसरे को धकिया रहे हैं.

मुंबई आने पर कभी किसी ने नसीहत दी थी कि ट्रेन में चढ़ना हो तो भीड़ के आगे हो जाओ, यदि उतरना हो तो भी भीड़ के आगे हो जाओ. भीड़ ट्रेन में चढ़ा भी देगी और ट्रेन से उतार भी देगी. ठीक वैसे ही जैसे भीड़ सरकारों को बनवा भी देती है और सरकारों को बिगाड़ भी देती है. तब से मैं भी उसी नियम का पालन करता हूं. ट्रेन की भीड़ का नेतृत्व करता हूं, वैसे ही जैसे कोई नेता करता है. यद्यपि नियंत्रण भीड़ के पास होता है. मैं सिर्फ आगे ही होता हूं. यदि प्लेटफॉर्म आने के पहले भी वे मुझे नीचे उतार दें तो न चाहते हुए भी मुझे नीचे कूदना ही होगा. चूंकि मेरा शरीर उस समय स्वयं के नियंत्रण में न होकर उस भीड़ के नियंत्रण में होता है.

खैर! अब ट्रेन चल चुकी है. भीतर सहयोग का अनूठा रूप देखने को मिल रहा है. कुछ क्षण पहले एक-दूसरे को धक्का देने वाले अब एक-दूसरे की सहायता से बैग, पानी की बोतल व अन्य सामान्य को सुरक्षित स्थान पर रख रहे हैं. ट्रेन ने धीरे-धीरे चलते हुए गति पकड़ ली है. दरवाजे से कुछ हवा अब भीतर आने में सफल हो रही है. पसीना अब ठंडा लग रहा है.

एक-एक सीट पर चार-चार व्यक्ति बैठे हैं, जबकि सीट तीन लोगों के लिए ही है. चौथा व्यक्ति न तो ठीक से बैठा है और न ही ठीक से खड़ा है. शायद लटका हुआ है. जैसे वह अंतरिक्ष की यात्रा का आनंद ले रहा है. बार-बार खिसक कर बैठने का प्रयास कर रहा है. बीच में से जब कोई यात्री उठ भी रहा है तो उसे चौथी ही सीट पर बैठना पड़ रहा है. रेल यात्रियों का अपना बनाया हुआ कानून है कि चौथा व्यक्ति बीच में नहीं बैठ सकता. ठीक उसी तरह जैसे भारतीय क्रिकेट टीम का बारहवां खिलाड़ी बारहवें नंबर पर आ सकता है, पर टीम का हिस्सा नहीं बन सकता. उसे वहीं से बाहर कर दिया जाता है.

जब कोई सीट से उठता है तो बैठने के लिए होड़ सी मच जाती है. बैठने के लिए नये-नये तरीके ईजाद किये जाते हैं. कोई आगे की तरफ से तो कोई पीछे की तरफ से बैठ जाता है. ठीक वैसे ही जैसे चुनावी मंचों पर छुटभैय्ये नेता बैठते हैं.

सामने वाली सीट पर एक युवती बैठी है. उसके साथ उसका पुरुष मित्र भी है. शायद कुछ देर की भी जुदाई बर्दाश्त न होती हो. इसीलिए वह जनरल डिब्बे में आ गयी है. वह अपने मित्र के कंधे पर सिर रखे हुए है, आंखें बंद! आसपास के लोग उसे निहार रहे हैं. वह बीच-बीच में सिर उठाती है, जुल्फें ठीक करती



(००१५)

एम.ए. (इतिहास-हिंदी), बी.एड., पी.एच.डी.

प्रकाशन : सामयिक विषयों पर लेख एवं कहानी.
'मानव मित्र' राजीव गांधी पर आधारित; 'मुंबई में एक और समंदर' मुंबई में २६ जुलाई २००५ की बाढ़ पर आधारित

संप्रति: प्राचार्य, राजीव गांधी हाईस्कूल, कल्याण (पू.)
है, फिर सिर उस युवक के कंधे पर रख देती है. युवती ने टी-शर्ट व जीन्स पहना हुआ है. उसके पेट और कमर के बीच का कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा है. यात्रियों का ध्यान उस तरफ बार-बार जा रहा है. वह हिस्सा बहुत गोरा है. चमक रहा है. उसके पेट के अंदर से झांकती हुई उसकी नाभि ऐसे लग रही है, जैसे स्वच्छ जल में तैरती मछली की आंख चमक रही हो. फिलहाल स्वच्छ जल और तैरती मछली का दर्शन लोग कर ही रहे हैं. हो सकता है कि किसी को यह दोपहर की धूप का सूरज भी लग रहा हो और वह अपनी आंखें सेंक रहा हो. युवती सुंदर है. उसके गालों का पसीना उसका मित्र अपने रूमाल से बार-बार पोंछ रहा है. आसपास के लोग उसे निहार कर अपनी यात्रा को सुखमय बना रहे हैं.

दरवाजे के पास भीड़ ज़्यादा है. कुछ लोगों का पैर ही ट्रेन में है. बाकी पूरा शरीर दरवाजे के बाहर झूल रहा है. वे लोग रेल पटरी के किनारे लगे खंभों के आने पर अपना सिर भीतर कर लेते हैं. खड़े लोग पूरी तरह से अपने दोनों पैरों को भी नीचे नहीं रख पा रहे हैं. यदि किसी का मोबाइल बज उठता है तो उसे कई मिनट लग जाते हैं अपने ही हाथ को अपनी पैंट की जेब तक ले जाने और फिर से निकालने में. किसी यात्री का मोबाइल बजता है तो रिंगटोन बजती है "बीड़ी जलाइले जिगर से पिया" तो किसी के मोबाइल से "सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा." यद्यपि अपने ही स्वयं के चेहरे के पसीने को पोंछने के लिए स्वयं के हाथ असमर्थ हैं. एक हाथ से छड़ पकड़ी है तो दूसरा हाथ भीड़ में दब

गया है। बड़ी मशक़त के बाद ही स्वयं के चेहरे का पसीना लोग पोंछ पाते हैं। जिन यात्रियों का क्रद छोटा है, वे लोग ठीक से सांस भी नहीं ले पा रहे हैं।

खिड़की के पास बैठे यात्री थोड़ा-थोड़ा मुस्करा रहे हैं। जैसे उन्हें अभी-अभी तनख़्वाह मिली हो। वे लोग रेल पटरी के किनारे बसी झोपड़ियों को देख रहे हैं। बगल से जब कोई ट्रेन गुज़रती है तो दरवाज़े पर खड़े कुछ मनचले युवक सीटियां बजाते हैं, तो कुछ अनाप-शनाप शब्दों से अपनी विद्वता का परिचय देते हैं। कुछ ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाते हैं, हाथों से इशारा करते हैं। भयानक भीड़ में भी आनंद लेने का यह नायाब तरीका है।

कुछ हिजड़े ट्रेन में आ जाते हैं। वे भीख मांग रहे हैं। कुछ भावुक दयालु क्रिस्म के लोग कुछ फुटकर पैसे उन्हें दे रहे हैं। हिजड़ों की कर्कश आवाज़ के सामने सब की आवाज़ धीमी पड़ गयी है। एक हिजड़ा जब उस युवती के पास जाता है जिसे सब देख रहे हैं तो उसका युवा पुरुष मित्र बड़े गर्विले अंदाज़ में पांच रुपये का सिक्का उसके हाथ में थमा देता है। जैसे उसने बहुत बड़ा दान किया हो। आखिर बगल में प्रेमिका है। दानी का स्वांग करना ही होगा। हिजड़ा उन दोनों के लिए लंबी दुआएं देता है। युवती उस अपने पुरुष मित्र से और चिपक जाती है। जैसे उसे सटकर आभास दिला रही हो, प्रिय तुम कितने दयालु हो, तभी तो मैं तुम्हें प्यार करती हूं।

अगले स्टेशन पर गाड़ी रुकी। भीड़ के साथ एक सुंदर महिला का प्रवेश हुआ। सभी उसकी तरफ़ देख रहे हैं। मन तो कर रहा है उसके लिए सीट खाली कर दें। पर लोग क्या सोचेंगे। खाली करने पर कोई और बैठ गया तो! वह पास ही खड़ी है। उसके आसपास के यात्री सावधान हो गये हैं। एक भाई साहब ने अपना अंग्रेज़ी का अख़बार फिर से खोल लिया है। विशिष्ट अंदाज़ से मोड़कर अख़बार पढ़ने का अभिनय करते हुए उस सुंदर महिला की ओर ताक-झांक कर रहे हैं। शायद चाह रहे हैं, बगल वाली सीट खाली हो और वह महिला उनके पास आ बैठे तो आज की यात्रा यादगार हो जाये। ख़ैर एक यात्री उठा महिला उस सीट पर जा बैठी। आसपास के यात्रियों ने उसे ही बैठने दिया। परंतु यदि कोई पुरुष यात्री होता तो शायद ही अन्य यात्री इतनी विनम्रता दिखाते। उस महिला के बगल में एक वृद्ध सज्जन बैठे हैं। उन्होंने अपने को ठीक-ठाक किया। चश्मा पोंछकर फिर से लगाया और अपने गरीब बालों पर हाथ फेरा। थोड़ा-सा शरीर को फैलाया। अब उस महिला से उनका शरीर स्पर्श कर रहा है। वे अब आराम से बैठ गये हैं। अन्य युवा यात्रियों की तरफ़ देख मानो कह रहे हैं, 'मेरे पास बैठकर कैसी लग रही है.'

पीछे के डिब्बे से भजन की आवाज़ आ रही है। कुछ यात्री भजन गा रहे हैं। तबला और मंजीरा भी बजाया जा रहा है। यह भजन अंबरनाथ स्टेशन से ही शुरू है और संभवतः मुंबई सीएसटी तक जारी रहेगा। यह इन यात्रियों का प्रतिदिन का काम है। विज्ञान की देन ट्रेन में अध्यात्म का रस भी चखा जा रहा है। वैसे भी अध्यात्म की एक शाखा ही तो विज्ञान है। पूरे डिब्बे में बातचीत का दौर जारी है। कुछ यात्री सिंधी भाषा में बात कर रहे हैं। ये यात्री संभवतः उल्हासनगर से हैं। विट्टलवाड़ी से सवार कुछ यात्री बंगला में बात कर रहे हैं। कल्याण से सवार कुछ यात्री भोजपुरी में बात कर रहे हैं। तो कुछ युवा यात्री अंग्रेज़ी भाषा में वार्तालाप करने में मसरूफ़ हैं। हिंदी में भी बातचीत हो रही है। कुछ ऐसी भाषाएं भी बोली जा रही हैं, जिन्हें समझ पाने में मैं असमर्थ हूं। कुछ विदेशी युवा भी यात्रा कर रहे हैं। शायद वे अफ्रीकी हैं। लगभग हिंदुस्तान के हर कोने से लोग इस डिब्बे में मिल जायेंगे।

कोई यात्री अपने बेटे की परीक्षा को लेकर चिंतित है तो कोई बेटे की शादी को लेकर। तो कई सरकार को लेकर परेशान हैं तो कुछ भारतीय क्रिकेट टीम के प्रदर्शन से क्षुब्ध हैं। कुछ यात्री महंगाई को लेकर पसोपेश में हैं तो कुछ लोग आधुनिक फैशन को लेकर परेशान हैं। कुछ अपने रोज़गार, नौकरी व व्यवसाय को लेकर चिंतित हैं, तो कुछ यात्री शेयर बाज़ार की हलचल से चिंतित हैं। ये वही निवेशक हैं, जिनकी चिंता हमारे वित्तमंत्री को रहती है। दूसरी तरफ़ इन तमाम झंझटों से दूर कुछ युवा यात्री लड़कियों के शरीर के भूगोल की तरह-तरह से व्याख्या कर रहे हैं। तो वहीं कुछ युवा लड़कियों के इतिहास पर चर्चा कर रहे हैं।

कुछ यात्री फ़र्स्ट क्लास में यात्रा कर रहे हैं। अपेक्षाकृत इस डिब्बे में शोरगुल कम है। कम बोलकर वे लोग शायद इस भीड़ से अपने आप को अलग साबित कर रहे हैं। ट्रेन में सवार कुछ लोग ग़रीब तबके से होंगे, तो कुछ मध्यमवर्ग से होंगे। कुछ संपन्न वर्ग से होंगे। कुछ पढ़े-लिखे होंगे, कुछ अनपढ़ भी होंगे, लेकिन इस यात्रा में सबकी गति एक सी है। अचानक ट्रेन के संदर्भ में ख्याल आया और लगा कि यह तो सिर्फ़ पटरियों पर दौड़ रही है। रास्ता चुनना इसके हाथ में नहीं है। सिगनल तो किसी और के नियंत्रण में है। इसे तो सिर्फ़ गति पर ही नियंत्रण करना है। जहां सिगनल हरा हो जाये चले चलो, जहां लाल हुआ कि रुक जाओ। ठीक इसी तरह से शायद प्रकृति के सिगनल से मनुष्य भी चल रहा है।

“कल का मैच तो भारत जीत गया।” किसी ने कहा।

“लंका से भिड़ना होगा, तो पता चलेगा।”

“निःशब्द में उस हिरोइन ने क्या काम किया है। अमिताभ

पर भारी पड़ी है。” एक यात्री ने कहा, तो जवाब आया, “हां, क्यों नहीं पूरी फिल्म में हाफ़ पैंट जो पहनी है. वो अट्टारह की, अमिताभ तो साठ का है.”

“अरे ! तेरी पगार बड़ी कि नहीं ?” एक यात्री ने कहा.

“अगले महीने काम छोड़ दूंगा. तीन बरस से पगार नहीं बढ़ाया. मक्खीचूस सेठ है.”

“ज़रा पानी की बोतल देना”, एक यात्री ने कहा.

“अरे उठो अंबरनाथ वालों, अभी गरम नहीं हुआ क्या?”

घाटकोपर स्टेशन आने के बाद कुछ यात्री उन यात्रियों की तरफ़ इशारा करते हुए कह रहे थे जो अंबरनाथ स्टेशन से ही सीट पर बैठकर आ रहे थे. कुछ बैठे यात्री खड़े हो गये.

“एक पर दो फ्री....!”

कंपनी के प्रचार का वास्ता देकर एक युवक कोई वस्तु बेच रहा है. इस भीड़ में भी वह अपना व्यापार कर रहा है.

“अरे दिनेश की आइटम का क्या हुआ?” एक युवा यात्री ने कहा.

“उसने शादी कर ली.”

“किससे?”

“दिनेश से.”

“कब?”

“दस-पंद्रह दिन हुए.”

“तभी तो आज कल नहीं दिख रहे हैं दोनों.” दिनेश ने ९:१४ की लोकल यात्रा के दौरान एक लड़की से प्रेम कर लिया. वह लड़की भी इसी ट्रेन से प्रतिदिन यात्रा करती थी. उस लड़की को ही ये आपस में ‘आइटम’ कह रहे हैं.

कुर्ला स्टेशन पर खाने के डिब्बे वाले दिखाई दिये. वे सभी लगेज में चढ़ जाते हैं. कमीज़ पैजामा पहने सिर पर टोपी लगाये ये वही डिब्बे वाले हैं, जो लंदन जाकर प्रिंस चार्ल्स की बारात तक कर आये हैं.

इस बीच छोटे-छोटे पत्थरों के टुकड़ों को बजाकर कुछ बच्चे भीख मांग जाते हैं. इन पत्थरों के टुकड़ों की तरह इक्कीसवीं सदी में भी इन बच्चों के हालात नहीं बदले हैं. कुछ ही लोग इन बच्चों को भीख देते हैं. वे मज़े से गाते हुए चले जाते हैं. “भूखे गरीब की यही दुआ है....” वाह ! रे मुंबई की जीवन रेखा.

“टिकट-टिकट!”

टी.सी.टिकट चेक कर रहा है. दरवाज़े पर खड़े कुछ यात्री बिना टिकट पकड़े गये हैं. वे टीसी से ‘चाय-पानी’ की बात कर रहे हैं. पर वह उन्हें झिड़क रहा है. एक बेटिकट यात्री ने पचास

रुपये मोड़कर टी.सी. की पैंट की जेब में डाल दिये.

मेरे बग़ल का एक यात्री जो काफ़ी देर से सो रहा है, अपने बग़ल वाले यात्री के कंधे पर बार-बार सिर टिका दे रहा है. रह-रहकर चौंक कर जाग भी जाता है. और फिर सो जाता है. आसपास के कुछ यात्री उसे घूर रहे हैं.

खिड़की के ऊपर इशतहार लगा है. किसी कंपनी के प्रोडक्ट का प्रचार किया जा रहा है. इसी बीच दादर स्टेशन पर उतरते समय कुछ यात्रियों में कहा-सुनी और धक्का-मुक्की हुई. कई यात्री तो प्लेटफॉर्म पर गिरते-गिरते बचे.

काफ़ी लोग इस स्टेशन पर उतरे और अब एक तूफ़ान के शांत होने का आभास हो रहा है. बचे हुए यात्री चैन की सांस ले रहे हैं. लोग ‘चैन की सांस’ कैसे लेते हैं, उसे यहां देखा जा सकता है. यहां किसी यात्री का पॉकेट भी मारा गया.

लोग अपने बाल ठीक कर रहे हैं. गंजे क्रिस्म के लोग कुछ बचे बालों को पूरे सिर पर फैलाने का प्रयास कर रहे हैं. जैसे कम बिजली उत्पादन के कारण सरकार लोडशेडिंग करके (बिजली में कटौती) हर क्षेत्र में पूरा करने का प्रयास करती है. पर कहीं न कहीं अंधेरा ही रहता है.

अटैची, बैग, पानी की बोतल सब कुछ समेटा जा रहा है. कपड़े ठीक-ठाक किये जा रहे हैं. कंघी लोगों की जेबों से बाहर आकर उनके सिर पर सैर कर रही है. मुंबई सीएसटी स्टेशन आने वाला है. प्लेटफॉर्म पर ट्रेन के रुकते ही हज़ारों की भीड़ न जाने कहां गायब हो जाती है, पता ही नहीं चलता. ऐसा लग रहा है, जैसे कोई नदी लंबी यात्रा करते हुए सागर में समा रही हो. ठीक उसी तरह से यह बड़ी भीड़ मुंबई में समा जाती है. फिर जैसे नदी सागर में मिलने पर अपनी पहचान खो बैठती है, वैसे ही यहां लोगों की पहचान भी खो जाती है और मुंबइया क्रिस्म की हो जाती है.

ऊपर ओवर ब्रिज पर चढ़ा तो नीचे प्लेटफॉर्म पर लोगों के सिर-सिर दिखाई पड़ रहे हैं. हर व्यक्ति जल्दी में है. सभी प्लेटफॉर्म से बाहर की तरफ़ दौड़े चले जा रहे हैं. महिलाएं, युवा, बुजुर्ग, साहब, चपरासी, मालिक और मज़दूर सभी भागे जा रहे हैं. फिर शाम को किसी को ६:३० की लोकल तो किसी को रात्रि की १:४० की अंतिम लोकल पकड़नी है.

राजीव गांधी हाईस्कूल,

कैलाशनगर, कल्याण(पूर्व), ठाणे-४२१३०६

फोन- ९२२६११८१७८/९३२४३४५९३७

राजा सारंगा... माझा सारंगा

सोने का थाल ढलका, समंदर सुनहरी चादर में सिमट गया. दूर क्षितिज पर कुछ बिंदु उभरे.....काले....स्याह....और फिज़ाओं में स्वर लहरियां गूंजने लगीं....राजा सारंगा....माझा सारंगा...दरियाचा पणियाला आयलयं तूफान उधानं!मेरे राजा....मेरे प्रिय...समंदर में ज्वार उठने लगा है...तूफान आ रहा है...आओ इस तूफान को पियें....! घरों से दूर समंदर के बीच कई-कई दिन बिताने के बाद मछुआरे वापिस लौटते हैं तो उनके स्वागत में समूची बस्ती उत्सव में डूब जाती है.....गीत-संगीत से सराबोर, जिसमें विरह है, वेदना है, प्रेम है, आवेग है, ऊर्जा है, उल्लास है.... दलदली ज़मीन, नारियल के पेड़ों, नमक के खेतों और मैंग्रोव की घनी झाड़ियों को दावानल की तरह लीलता हुआ यह महानगर भले ही लगातार अपने पंजे फैलाये जा रहा हो लेकिन यहां के इन मूल बाशिंदों की सांस्कृतिक जिजीविषा से पार पाना उसके लिए संभव नहीं. गगनचुंबी अट्टालिकाओं के बीच टापुओं की भांति बसी इन बस्तियों ने हमेशा से अपने आपको, अपनी संस्कृति को बचाये और जिलाये रखा है. प्रकृति के उस नियम पर चलते हुए जो कहता है कि दावानल के बीच, जीवन हमेशा मुस्कुराता रहेगा. बरसों से यह सिलसिला इसी तरह चला आ रहा है...अनवरत!

क्षितिज पर उभरे बिंदु सुनहरी चादर पर फिसलते हुए करीब आये और किश्तियों में तब्दील हो गये. पास की कोली बस्ती में उत्साह और उल्लास अपने चरम पर पहुंच गया...राजा सारंगा....माझा सारंगा.... ढोल-ताशे की इस लय-ताल को सुन, कल तक प्रेमादेवी के भी पैर थिरकने लगते थे और बूढ़ी रंगे ऊर्जा से भर-भर उठती थीं. मस्ती में डूबे इन कोलियों से कोई सीधा रिश्ता ना होते हुए भी वे उनके उत्साह और उल्लास की ओर से खुद को निर्लिप्त नहीं रख पाती थीं. लेकिन आज इस सबसे बेखबर वे अपने आप में खोयी हुई थीं. उनके सामने था अरब सागर का अनंत विस्तार...लेकिन जहां नज़र जाती, वही चेहरा उभर आता और रह-रहकर कानों में वो आवाज़ गूंजने लगती, वक्रत आने दो...सोने में मढ़वा दूंगा तुम्हें....!

वक्रत.....! बेरहम वक्रत!....आह!.....प्रेमादेवी के मन में एक टीस सी उठी....इन साठ बरसों में सब कुछ बदल गया.न वह जवानी रही, न ही वे लोग....एक एक कर सब बिछुड़ते चले गये...और आज....हे ईश्वर ! प्रेमादेवी ने पलकें भींचीं तो आंसुओं की दो बूंदें ढलककर गालों की झुर्रियों में सिमट गयीं.

साठ बरस पहले उन्होंने यहां क्रदम रखा था तब यह महानगर ठीक से एक नगर की शकल भी नहीं ले पाया था. घर से सैकड़ो किलोमीटर दूर...अनजान सी जगह....अजनबी से लोग.

॥ शिशिर कृष्ण शर्मा ॥

शादी कब हुई यह तो प्रेमादेवी को याद नहीं. शायद गोद में ही रही होंगी तब. लेकिन पंद्रह बरस की उम्र में गौना हुआ, मां-बाप, भाई-बहन पीछे छूटे और तीसरे ही दिन पति के साथ वे ससुराल से भी विदा हो गयीं. ससुराल में आखिर उनका था ही कौन? मां-बाप ने बेटी ब्याही तो भरे-पूरे परिवार में थी लेकिन कुछ ही दिनों बाद फैली महामारी ने सब कुछ खत्म कर दिया था. अपने परिवार में सिर्फ श्याम इसलिए बच पाया था कि वह घर से दूर था. घर-गृहस्थी के जगमगाते सपनों ने दो दिनों के सफ़र के बावजूद थकावट का जरा भी अहसास नहीं होने दिया प्रेमादेवी को. उन्हें क्या पता था कि यह शहर उनके लिए शेर की मांद सा साबित होगा जिसमें निरीह जानवरों के पंजों के अंदर जाने के निशान तो होते हैं, बाहर आने के नहीं.

‘मम्मीजी खाना लगा दूं?’ नागम्मा के इस सवाल से प्रेमादेवी की तंद्रा भंग हुई. भूख नहीं है....तू खा ले...प्रेमादेवी ने कहना चाहा लेकिन ज़ुबान तालू से चिपक कर रह गयी. प्रत्युत्तर में वे सिर्फ सिर हिलाकर ना कह पायीं और फिर से एक बार उन्होंने पलकें भींच लीं. मन का भारीपन माहौल में भी तारी हो उठा. कुछ तो बढ़ती उम्र का तक्राज़ा....कुछ एक एक कर संगी-साथियों का बिछुड़ते जाना ! कहा नहीं जा सकता ये मजबूरी थी या अपना खोजा सुख, एकाकीपन प्रेमादेवी को रास आ चुका था. पिछले छह बरसों से उन्होंने अपने इस विशाल प्लैट से बाहर क्रदम नहीं रखा था. कभी इसकी ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई उन्हें.

कई बरस पहले परिचारिका के रूप में क्रम रखने वाली नागम्मा आज इस घर की धुरी जो बन चुकी थी. प्रेमादेवी को मुक्त करते हुए नागम्मा ने घर-बाहर के दायित्वों का तमाम बोझ बखूबी अपने कंधों पर उठा लिया था.

वक्रत की परतों के नीचे दबे जिस धुंधलाये अतीत को अब तक प्रेमादेवी नजरअंदाज करती आयी थीं आज एकाएक वह किसी पिशाच की भांति उनके सामने आ खड़ा हुआ. प्रेमादेवी ने भरसक कोशिश की उसके पंजों से खुद को बचाने की लेकिन उसकी ताकत के आगे वे बेहद कमजोर साबित हुईं. साठ बरस पहले का वक्रत उनकी आंखों के सामने ताज़ा हो उठा जब सुघड़ता के साथ उन्होंने किराये की खोली में अपनी गृहस्थी जमायी थी. कहां तो मायके का हवेलीनुमा मकान, खेत-खलिहान, ताज़ा आबो हवा...और कहां गंदगी से बजबजाती गलियों की भूलभुलैया के बीच यहां पति की किराये की खोली. लेकिन चेहरे पर शिकन नहीं आने दी प्रेमा ने. शायद यह अपराधबोध ही था श्याम का जो प्रेमा को बाहों में समेटकर उनके कानों में वो बुदबुदाया था, मायावी है यह शहर! यहां कब किसकी क्रिस्मत खुल जाये पता नहीं चलता. मैं जानता हूं यह जगह तुम्हारे रहने लायक नहीं. लेकिन वक्रत आने दो, हमारा भी बंगला होगा, मोटर होगी, नौकर-चाकर होंगे!.... सोने में मढ़वा दूंगा तुम्हें. वह दिन दूर नहीं जब तुम रानी की तरह राज करोगी....और श्याम के सपनों में खुद भी खोई प्रेमा ने उसके सीने में मुंह छुपा लिया था. लेकिन कड़ी मेहनत के बावजूद श्याम के सपने सिर्फ सपने ही बने रह. वह इस शहर की, सपने बेच-बेच कर सपने जगाती उस सतरंगी दुनिया का हिस्सा था जिसके रंगों में सराबोर होने के सपने लिये सैकड़ों लोग रोजाना यहां खिंचे चले आते हैं. देखना वह दिन बहुत जल्द आयेगा जब हर जुबान पर मेरा नाम होगा... लोग मेरी बनायी धुनें गुनगुनायेंगा...कहते श्याम का चेहरा आत्मविश्वास से चमक उठता था. लेकिन गुज़रते वक्रत के साथ उसके ये शब्द कमजोर पड़ते चले गये. अपना बाजा लेकर बिला नागा वो अलस्सुबह घर से निकल पड़ता.और रात गये जब लौटता, तो झुकी नज़रें और सूखें होंठ उसकी खाली जेब और डूबती आशाओं की चुगली करने को पर्याप्त होते थे. सोने में मढ़े जाने की लालसा लिये प्रेमा के शरीर से जब नाक की लौंग तक के जुदा होने की नौबत आ गयी तो उनके मन में श्याम के सपनों के ही नहीं खुद श्याम के प्रति भी वितृष्णा जन्म लेने लगी. लेकिन श्याम की कही एक बात तो सही साबित हुई. सचमुच मायावी था यह शहर. इसके जादू ने प्रेमादेवी



के मन में कब खुद के सपने जगाये और कब उन सपनों को हकीकत में बदल डाला पता ही नहीं चल पाया.

सोने के थाल ने रंग बदला, समंदर दहकने लगा. कोली बस्ती में उल्लास अब जुनून की शकल ले चुका था....राजा सारंगा...माझा सारंगा....! प्रेमादेवी के मन में फिर एक टीस सी उठी. हे ईश्वर...! क्यों अनुमति दी मैंने शशांक को अपने करीब आने की?...क्यों नहीं महसूस कर पायी कि उसका इस तरह आना ज़िंदगी की इस शाम में मेरे लिए तूफान खड़ा कर देगा? उसकी बातों में लाख ईमानदारी सही लेकिन क्यों भावनाओं को व्यावहारिकता पर हावी होने दिया मैंने? करीब छह महीने पहले शशांक का पहला फोन आया था. प्रेमादेवी से मिलने की बेताबी उसकी बातों में साफ़ झलक रही थी.जो गुज़र गया उसे याद करने से क्या फायदा? और फिर आज के इस दौर में किसे दिलचस्पी है मेरे जैसों के बारे में जानने की? मैं अपने हाल में खुश हूं....लाख कोशिश की प्रेमादेवी ने टालने की लेकिन शशांक ने हिम्मत नहीं हारी. सिर्फ़ एक बार मिलना चाहता हूं आपसे...देखिए निराश मत कीजिए....हर बार शशांक का यही आग्रह होता. और फिर एक रोज़ बेहद भावुक होकर उसने कहा, बचपन से माता-पिता की जुबान से आपका नाम सुनता आया हूं....आज भी उनकी पीढ़ी के लाखों ऐसे लोग हैं जो जानना चाहते हैं अब आप कहां हैं, किस हाल में हैं....माता-पिता को अकेला छोड़कर इस शहर में आया हूं....आपके बारे में मेरा लिखा पढ़कर उन्हें बेहद खुशी होगी....और मैं हर हाल में उन्हें खुश देखना चाहता हूं. मां बनने का सुख प्रेमादेवी के भाग्य में भले ही न रहा हो लेकिन माता-पिता के सुख को तो वह महसूस कर ही सकती थीं. ज़िंदगी शशांक के लिए जो कर पाना असंभव था उसे भावुक शशांक ने बेहद आसानी से कर दिखाया. अपने भीतर कुछ पिघलता सा महसूस किया प्रेमादेवी ने....और फिर जो प्रेमादेवी दशकों पहले गुमनामी में सुख खोज कर घर की चारदीवारों में सिमट चुकी थीं, उनकी

तस्वीर शशांक की क्लम के जरिये एक बार फिर से लोगों के जहन में ताज़ा हो उठी, वरना अब तक तो यह मानने वालों की भी कमी नहीं थी कि प्रेमादेवी इस दुनिया में नहीं हैं।

शशांक अगर स्वार्थी होता तो अपनी बिरादरी के अन्य लोगों की तरह काम निकल जाने के बाद वह भी प्रेमादेवी की ओर रुख न करता. लेकिन उसने उनसे लगातार संपर्क बनाये रखा. एकाध बार हंसते हुए उसने कहा भी, नहीं नहीं.... मैं उस बिरादरी का नहीं हूँ.... आप बज़ुर्गों के प्रति उत्सुकताएं और सम्मान तो मेरी फ़ितरत में ही है.... जब तक मुझे इस मंच का सहारा मिला हुआ है अपने शौक को पूरा करता रहूंगा... जिस दिन मेरे पास मंच नहीं रहेगा कुछ और देखूंगा... इस शहर में काम की कमी है क्या! सच में शशांक उस बिरादरी का नहीं था, क्योंकि वो घाघ नहीं था. ... उसकी ईमानदारी ने प्रेमादेवी को उसके और करीब ला खड़ा किया. लेकिन आज....!

ज़िंदगी की किताब के जिस अध्याय को प्रेमादेवी हमेशा के लिए बंद कर चुकी थीं उसके पन्ने एक एक कर उनके सामने खुलने लगे. उन पन्नों में दर्ज इबारतें बताती थीं कि लगातार मिल रही असफलताओं ने किस तरह श्याम के आत्मविश्वास को हिला कर रख दिया था. भीतर उठ रहे झंझावातों को छुपाने की हर कोशिश के साथ प्रेमा को वह पहले से कहीं ज़्यादा दयनीय नज़र आने लगता था. प्रेमा के माथे की बड़ी सी बिंदी और मांग का मुट्ठी भर सिंदूर श्याम को बेहद पसंद थे. एक वक़्त था जब वह सजी-संवरी प्रेमा के कानों में बुदबुदाता था, बहुत खूबसूरत लग रही हो तुम.... और प्रेमा शरमा कर उसके आगोश में सिमट जाती थीं. लेकिन हर गुज़रते दिन के साथ जगमगाती दुनिया के पीछे छुपा अंधियारा गहराता रहा और प्रेमा के मन में ज़िंदगी के प्रति विरक्ति बढ़ती चली गयी. लेकिन ज़िंदगी को ठुकरा देना भी तो आसान नहीं था. आखिरकार जब पेट की आग बर्दाश्त से बाहर हो गयी तो एक रोज़ बाहरी दुनिया के सामने उन्होंने घूँघट उलट दिया.

पुरुष के साये से बाहर निकल कर आयी एक जवान और खूबसूरत औरत को देख दुनिया की नज़रें किस तरह बदलती हैं, यह प्रेमा ने पहली बार जाना. हर पुरुष में वह पीछे छूट चुके अपने पिता और भाई को खोजतीं. लेकिन कुछ ही लम्हों में उस चेहरे की जगह लकड़बग्घे का सिर उग आता. लिज़लिज़ा.... गलीज़.... ठंडे गोश्त तक को निगल जाने को तैयार धूर्त लकड़बग्घा. कपड़ों को बाँधकर शरीर के एक-एक अंग को टटोलती नज़रों ने शुरूआत में उन्हें बेहद तकलीफ़ दी. कई बार भीतर ही भीतर रोयीं वे. लेकिन दहलीज़ से बाहर निकले क्रदमों

का वापस घर की चारदीवारी में लौटने का मतलब था फिर वही फ़ाकाकशी. रास्ते तो उनके सामने हज़ारों थे लेकिन हरेक रास्ते पर लकड़बग्घों के झुंड के झुंड घात लगाये बैठे थे. लंबे वक़्त तक प्रेमा तय नहीं कर पायीं कि किस दिशा में क्रदम बढ़ायें, और कैसे. लेकिन जब उन्होंने खुद को दुविधा की स्थिति से उबारा तो एकाएक दुनिया बेहद खूबसूरत हो उठी. औरत होने का जो दुख उन्हें अक्सर सालता आया था, उसके पीछे छुपी अकूत ताकत को पहचानते ही उन्हें समझ में आने लगा कि लार टपकाते लकड़बग्घों को पालतू बनाना कितना आसान है. और तब जन्म लिया एक नयी प्रेमा ने! लेकिन क्या इसकी ज़िम्मेदार वो खुद थीं? नहीं!..... इसका ज़िम्मेदार था, यह शहर.... यह मायावी शहर!

असफलताएं इंसान से उसका आत्मविश्वास और पुरुषार्थ ही नहीं आत्मसम्मान और पुरुषत्व तक छीन लेती हैं. यही वजह थी कि प्रेमा के बढ़ते क्रद को श्याम खामोशी से देखता रहा. अपनी बेबसी पर दो आंसू तक बहाने की इच्छाशक्ति तक नहीं बची थी उसमें. प्रेमा के पीछे खड़े थे सेठजी.... सपने जगाती सतरंगी दुनिया की वह बड़ी हस्ती जो पत्थर को पारस में बदल देने की कुव्वत रखते थे. उनका सहारा मिलते ही प्रेमा के क्रद ने ऐसा विराट आकार लिया कि श्याम के भीतर प्रेमा के सामने खड़ा होने तक की हिम्मत नहीं रही... उस प्रेमा के सामने जो उसकी ब्याहता थी. लेकिन प्रेमादेवी को भी उस यश-कीर्ति, मान-सम्मान और धन-दौलत की कम क्रीमत नहीं चुकानी पड़ी. सबसे पहले तो उन्हें शाम के वजूद को झुठलाना पड़ा.... वह श्याम जिसे वे अपना सर्वस्व मान चुकी थीं. व्यावसायिकता का तक्राज़ा था कि चाहने वालों को उनके विवाहिता होने का पता न चल पाये. और प्रेमा के वजूद को मां-बाप, भाई-बहन, नाते-रिश्तेदारों ने इसलिए झुठला दिया कि उनका खानदान भांड-मिरासियों का नहीं था. अपनों से इस तरह दूर होने की पीड़ा को हलाहल की भांति खामोशी से पी जाना पड़ा उन्हें. ये व्यावसायिक दबाव ही थे कि कुछ ही दिनों बाद श्याम को उसकी किराये की खोली में अकेला छोड़ उन्हें उस बंगले में चले आना पड़ा जो सेठजी की आरामगाह और ऐशगाह था. हालांकि मन ही नहीं क्रदम भी बेहद भारी हो उठे थे उस वक़्त उनके. बरसों तक वे श्याम के निर्विकार चेहरे और पथरायी आंखों को भुला नहीं पायी थीं.

वक़्त गुज़रा...! नगर महानगर में तब्दील हो गया. बंगले की जगह अट्टालिका ने ले ली. प्रेमादेवी की पीढ़ी पुरानी हो गयी. और फिर एक वक़्त आया जब सेठजी नहीं रहे. प्रेमादेवी को पटरानी का दर्जा दे पाना तो उनके लिए संभव नहीं था लेकिन

जाने से पहले वो इतना ज़रूर कर गये कि उनके बाद प्रेमादेवी को किसी का मोहताज न होना पड़े. और फिर जैसे जैसे संगी-साथी बिछुड़ते रहे, प्रेमादेवी अपने आप में सिमटती चली गयीं. लेकिन आज....!

हर शाम की तरह आज भी प्रेमादेवी बालकनी में बैठी समंदर की लहरों को गिन रही थीं कि शशांक का फोन आया. बेहद ठंडी आवाज़ में बिना किसी लाग-लपेट के उसने कहा, आपको पता चला श्यामजी गुज़र गये?और प्रेमादेवी के बूढ़े शरीर में सिहरन दौड़ गयी. श्याम से मेरे रिश्ते की जानकारी तो उस ज़माने में भी शायद ही किसी को रही हो. शुरुआत में कभी कभार वो समंदर के किनारे खड़ा बंगले की ओर टकटकी लगाये दिखता भी था तो मैं ही खिड़की बंद कर लेती थी. हालांकि ऐसा नहीं कि उसकी बेचारगी मुझे रुलाती न हो लेकिन मैं भी तो बेबस थी. अब बरसों से मुझे खुद भी उसके बारे में कुछ नहीं पता. फिर कल के पैदा हुए इस छोकरे ने उसे कहां से ढूंढ निकाला? इस सवाल ने पल भर में उनके मनोमस्तिष्क को बेतरह झंझोड़ कर रख दिया. अनजान बनने की कोशिश करते हुए उन्होंने पूछा, श्याम कौन? लेकिन खुद की आवाज़ किसी अंधे कुएं में से आती महसूस हुई उन्हें. देखिए मैं सब जानता हूं...और तब भी जानता था जब आपका इंटरव्यू करने आया था. लेकिन मेरी कोशिशों के बावजूद आप अपने अतीत के इस हिस्से को साफ़ छुपा गयीं और मेरे उसूलों ने इजाज़त नहीं दी कि बिना आपकी अनुमति के कुछ भी लिखूं. कहा न, मैं उस बिरादरी का हिस्सा नहीं हूं! और इसके बाद शशांक ने जो कुछ कहा उसका लब्बोलुआब यही था कि पिछले कुछ सालों से श्याम का मानसिक संतुलन ठीक नहीं था, कुछ महिनों से वे बीमार चल रहे थे. दो दिनों से उनकी खोली का दरवाज़ा बंद था. आज दोपहर दरवाज़ा तोड़ने पर उनकी मौत का पता चला, नगरपालिका वाले लावारिस का ठप्पा लगाकर उनकी लाश को ले गये. श्याम के कमरे से पत्र-पत्रिकाओं में छपी प्रेमादेवी की सैकड़ों तस्वीरें मिलीं और हर तस्वीर के माथे पर लाल स्याही से बड़ी सी बिंदी और मांग में गाढ़ा सिंदूर उकेरा गया था. लाख कोशिश की प्रेमादेवी ने खुद को संयत रखने की लेकिन मन का एक कोना भीग ही गया. और फिर तो यादों के समंदर में डूबती-उतरती प्रेमादेवी जाने कितनी बार भीतर ही भीतर हंसीं, रोयीं, मुस्करायीं, सिसकियां भरीं....!

दहकता समंदर ठंडा होकर सलेटी राख में बदल चुका था. सोने का थाल उस राख में ही कहीं गुम हो चला था. कोली बस्ती के उल्लास से कोई तमाम ऊर्जा चुरा ले गया था. रोज़ की तरह घर

का कामकाज निपटा कर नागम्मा बालकनी में पहुंची तो देखा प्रेमादेवी वहां नहीं थीं. मम्मीजी...! नागम्मा ने पुकारा लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला. प्रेमादेवी को खोजती हुई वह उनके कमरे में पहुंची तो उसके मुंह से चीख निकल पड़ी. बरसों हो गये थे उसे प्रेमादेवी की सेवा में रहते लेकिन उनका ऐसा रूप उसने पहले कभी नहीं देखा था. नववधु का सा श्रृंगार किये वे कमरे में रखे आदमक़द शीशे के सामने खड़ी थीं। मम्मीजी...! साहस बटोरते हुए नागम्मा ने प्रेमादेवी को पुकारा. निर्विकार चेहरा लिये प्रेमादेवी उसकी ओर धूमिं. लाल गोटेदार साड़ी में लिपटी हुई, कुहनियों तक लाल चूड़ियां पहने, ऊपर से नीचे तक सोने में मढ़ी हुई. माथे पर बड़ी सी बिंदी और मांग में मुट्ठी भर सिंदूर....आह....! सर्वथा अनिंद्य रूप-रंग....अद्वितीय सौंदर्य...अद्भुत तेज़....! उनके चेहरे पर नागम्मा की नज़रें टिक न सकीं. बरसों पुराना श्रृंगारदान और आभूषणों के दसियों खाली डिब्बे बिस्तर पर खुले पड़े थे. नागम्मा जड़वत उन्हें देखती रही...अपनी ही एक-एक धड़कन को साफ़-साफ़ सुनती हुई. उसे महसूस हुआ मानों साक्षात् शक्तिरूपा सामने खड़ी हो. कुछ क्षण प्रेमादेवी पथरायी आंखों से नागम्मा को ताकती रहीं. फिर एकाएक उनके गले से एक मर्मांतक चीख निकली और वो फूट-फूटकर रोने लगीं. नागम्मा समझ ही नहीं पायी कि यह अचानक उन्हें हो क्या गया है. प्रेमादेवी का वो करुण क्रंदन...वह आर्तनाद...मरघट में आधी रात को पिशाचिनी का सा उनका विलाप...उपफ! मारे भय के नागम्मा के शरीर का सारा खून सूख गया. विस्फारित नेत्रों से वह उन्हें रोते-बिलखते देखती रही. अचानक प्रेमादेवी ने अपना सर दीवार पर दे मारा.और इससे पहले कि नागम्मा आगे बढ़कर उन्हें रोक पाती, वो दोनों कलाइयों को दीवार पर पटकने लगीं. नागम्मा उन्हें संभालने की कोशिश करती रही लेकिन वे बार-बार उसकी गिरफ़्त से छूटकर पागलों की तरह दीवार से सर टकराती रहीं...आखिरकार कलाइयां पटक-पटक कर उन्होंने सारी चूड़ियां तोड़ डालीं और फिर नागम्मा की बाहों में बेहोश होकर गिर पड़ीं.

रात गहराने लगी थी. विरह के लंबे अंतराल और थका देने वाले उत्सव के बाद समूची कोली बस्ती अब मादकता की गिरफ़्त में थी. चारों तरफ मरघट का सा सन्नाटा पसरा हुआ था. एकाएक दूर कहीं कोई गुनगुना उठा था....राजा सारंगा....माझा सारंगा...दरियाचा पणियाला आयलयं तूफान उधानं...!

✍️ ए/६०४, कार्तिक्या टॉवर, साईबाबा नगर,
मीरारोड (पूर्व) - ४०१ १०७ (ठाणे),
फोन - ९८२१३९४४८६

पांचवां बूढ़ा

वे चार बूढ़े थे.

अपने शहर के व्यस्त चौराहे की एक पुलिया पर प्रतिदिन बिला नागा बैठते थे. शहर की तमाम समस्याओं पर विचार विमर्श करना उनका रोज़ का काम था. वे एक अच्छे और ईमानदार समीक्षक भी थे जो शहर की तमाम समस्याओं की बेबाक समीक्षा करते, फिर उसका हल निकालते.

उस शहर को उन्होंने क्रमशः चार भागों में बांट लिया था. उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम. चारों अपने-अपने क्षेत्रों में घूमते, वहां के हालात पता करते फिर इस पुलिया पर बैठकर आगे की रणनीति तय करते. यह पुलिया उन्हें वीर विक्रमाजीत के सिंहासन से किसी तरह कम नहीं लगती थी.

क्या मजाल कि उनके रहते कोई घोटाला, जबरियाना, काला-पीला, कोई ठगा-ठगी पनप पाती. उनकी गिद्ध दृष्टि से कोई कहां तक बचता भला.

अपने शहर को आदर्श शहर में ढालने की पुरजोर कोशिश की थी उन्होंने. चाहे सड़क का मामला हो, बिजली-पानी की समस्या, प्रदूषण, गंधाती नालियां या दखलंदाजी, ये बूढ़े हर समस्या से जूझने में सक्षम थे. विजयश्री उनके साथ थी, हर जगह उनकी वाह-वाह थी.

अखबार उनकी प्रशंसा करते अघाते नहीं थे. प्रशंसक लाइन लगाये रहते. मीडिया उनके पीछे रहता. पर इन सबसे बेखबर ये पूर्णतः निर्लिप्त रहते तथा चारों दिशाओं में खूब मन लगाकर काम करते.

उनका शहर पूरी गति से विकास कर रहा था. शहर की बिगड़ी फ़िजा को सुधारकर वे बेहद प्रसन्न थे. मनोनुकूल सफलता ने शहर को चार चांद लगा दिये थे. एक सुदीर्घ लड़ाई लड़ रहे थे वे. उन्होंने शहर को शांति दी थी. कौमी एकता में विश्वास करनेवाले बूढ़ों ने शहरवासियों का दिल पूरी तरह जीत लिया था.

उनके रहते सट्टाघर, जुआघर कैसे चलते भला. शहर की सीमा में ताड़ीघर, शराब घर ढूँढ़े से नहीं मिलते. दलाल, बिचौलिये, ज़मींदोज़ थे. मिलावट करनेवाले, हफ़्ता वसूलनेवालों का अता-पता नहीं था. चिड़ीमार, भांजीमार सब तड़ीपार थे. बंदरबांटियों का अस्तित्व ही नहीं बचा था. कमाल के बूढ़े थे. अपनी जान

हथेली पर लेकर घूमते थे. लोग उनके कदमों को चूमते थे.

जी हां, यही एक ऐसा शहर था जिसमें शांति बहाल थी. असमाजिकता शून्य और मतलबियों ने अपना रास्ता बदल लिया था. सच-झूठ का वहां छत्तीस का आंकड़ा था. शहर के भाल पर सफलता का सूरज पूरी आभा के साथ चमाचम चमक रहा था.

ऐसे में मिला पांचवां बूढ़ा - हंसकर बोला- “आपकी वाहवाही सुनकर आया हूं.

आप लोग इस शहर के सुदृढ़ चार पाये हैं.

“आज्ञा”, - चारों एक साथ उससे मुखातिब हुए.

पांचवां बूढ़ा मुस्कराकर बोला- “आजकल बेकार हूं. अखबार पढ़-पढ़कर समय गुज़ारता हूं. पक्का अर्थशास्त्री, पर मेरा

॥ कुंवर प्रेमिल ॥

उपयोग नहीं हो रहा है दुर्भाग्य है.”

“कुटिल मुस्कान है इसकी संभलना.” चारों में से एक फुसफुसाया.

“घर के लिए अनुपयोगी भी. बहू पूरा नहीं पड़ने देती. लड़का रास्ते में ही पेंशन छीन लेता है. अजी हलवा-पूरी तो मुझे पेंशन मिलनेवाले दिन ही नसीब होता है. बाक़ी दिनों में सूखी रोटी, बासी सब्ज़ी से ही गुज़ारा होता है.

“हम आपके लिए क्या करें श्रीमान” - चारों बूढ़ों ने हाथ जोड़कर पूछा.

“आप लोग परोपकारी हैं. दयालु हैं. मेरी ग़ालीच ज़िंदगी को सहारा दे सकते हैं.

“कैसे?”

“मुझे भी इस पुलिया पर जगह दें. आपके काम में हाथ बटाऊंगा. आपको भी कुछ राहत मिलेगी, मैं भी कुछ सुकून पा जाऊंगा.”

“क्यों न हम आपके बहू-बेटे को समझायें. क़ानून का भय दिखायें. घर में शांति मिलेगी तो सुकून अपने आप आ जायेगा.”

“शहर के वृद्धाश्रमों में हमारी अच्छी पैठ है. कर्हें तो किसी एक में जगह दिला दें. वहां तो आपको सुकून मिलेगा ही

मिलेगा जी.”

पांचवां बूढ़ा- “वह तो हो जायेगा. आप लोगों पर मुझे पूरा विश्वास है. पहले आप अपनी जमात में शामिल तो करें- ‘पर हित सरस धर्म नहीं भाई’ का पक्षधर मैं भी हूं जी.”

“इस पुलिया पर हम चार ही मुश्किल से बैठ पाते हैं. पांचवें के लिए हम जगह कहां से लायेंगे भाई.” चारों में से किसी एक ने अपनी सफाई दी.

“भाई कहते हो और फ़ासला भी रखते हो. आपको मुझे यहां बैठाना ही पड़ेगा वरना आपकी लोकप्रियता, न्याय प्रियता संदिग्ध हो जायेगी. जब एक आदमी को ही अपने बीच में एडजेस्ट नहीं कर पाये तो पूरे शहर को क्या खाक साथ लेकर चलेंगे आप.”

“यह खेला खाया है. इसके बाल धूप में सफ़ेद नहीं हुए हैं. चीता और भेड़िये का मिला जुला स्वरूप है यह.” उन चारों में से एक फिर फुसफुसाया.

“बात तो आपकी सौ फ्रीसदी सच है. जगह ही सबब है वरना क्या आपत्ति हो सकती है हमें.” वे चारों एक साथ बोले.

“अजी दिलों में जगह होनी चाहिए बस. पुलिया पर तो जैसे-तैसे जगह हो ही जायेगी.” कहकर पांचवां बूढ़ा एकाएक उचककर जबरिया उनके बीच जा बैठा. पुलिया किनारे के दोनों ओर के बूढ़े यक्रीनन गिरते-गिरते बचे.

“अब जब आपने अपने बीच में जगह दे ही दी है तो शहर का मध्य क्षेत्र भी देकर उपकृत कर दीजिए.”

वे चारों बूढ़े, इस बूढ़े की हाज़िर जवाबी, कुशाग्र बुद्धि, चंचलता और चपलता के सामने नतमस्तक हो चुके थे. उन्होंने अपने-अपने क्षेत्र में कटौती कर शहर का मध्य क्षेत्र उसे प्रदान कर दिया. पूरे सहयोग का वादा भी किया.

अब पांचवें को भी जल्दी ही शहर में उसी तरह की इज़्जत मिलने लगी. घर में बहू-बेटे भी उसकी इज़्जत करने लगे. बेटे ने रास्ते में पेंशन छुड़ाना बंद कर दिया. बहू नाश्ते में हलवा पूरी खिलाने लगी. इसका श्रेय वह इन चारों को देने लगा. ये चारों भी अपने आपको धन्य समझने लगे.

पांचवां अपने हाथ-पैर फैलाने लगा. उन चारों के क्षेत्र में अतिक्रमण भी करने लगा. धीरे-धीरे वह उनका उस्ताद साबित होने लगा. उसकी चाणक्य नीति थी, करिश्मा था, शहर जल्दी ही उसकी जय-जयकार करने लगा.

सबसे पहले उसने बिचौलिये पाले. दलालों को दाने फेंके. सट्टाघर, जुआघर, शराबघर क्रमशः उसके क्षेत्र में आसीन होने



कुंवर उमिल

३१ मार्च १९४७

दुइयापानी

जिला- नरसिंहपुर (म.प्र.)

प्रकाशन: प्रायः सभी विधाओं में स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में ‘चिनम्मा’ (कहानी संग्रह), ‘अनुवांशिकी’, (लघु कथा संग्रह), ‘आम आदमी : नीम आदमी’, (हास्य काव्य संग्रह), ‘परिक्रमा’ (बाल-किशोर उपन्यास), जबलपुर के लघुकथाकारों की लघुकथाओं का संपादन ‘ककुम’ द्वारा. आकाशवाणी जबलपुर छतरपुर (म.प्र.) से कहानियों, कविताओं का प्रसारण.

सम्मान: ‘साहित्य लोक’ परियावां प्रतापगढ़ से ‘साहित्य श्री’, ‘शिवसंकल्प साहित्य परिषद’, होंशंगाबाद (म.प्र.) से ‘कथाश्री’, ‘पाथेय’ जबलपुर से ‘सृजन-अलंकरण’ तथा देश की विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मान एवं सम्मानोपाधियां.

अनुवाद: लघुकथाओं का मराठी में अनुवाद एवं प्रकाशन, लघुकथाओं का निमाड़ी लोक वाली में अनुवाद, संकलन प्रकाशनाधीन

लगे. प्याऊ घर की जगह ताड़ीघर, हफ़ता वसूली, बंदरबांट, कन्नीकाट सब जगह फलने-फूलने लगे. तड़ीपार शहर में बेखटके आने-जाने लगे.

चारों बूढ़ों ने यह सब सुना तो खिसियाकर रह गये. पांचवा कोई सुबूत छोड़ता ही कहां था. उल्टे चारों उससे कटने लगे. असमर्थता में हाथ मलकर उसे जोंक कहने लगे. वह बूढ़ा जोंक से सियार बन गया. हुआ-हुआ चिल्लाकर चारों का यशोगान करता. किंतु पीठ पीछे उनकी खिल्लियां उड़ाता. जनता उसके समर्थन में जुटने लगी थी. उसके पास सियार का दिमाग था ही, बिना आवाज़ उनकी जड़ें काटने लगा. जड़ें कट रही थीं पर

आवाज़ नहीं हो रही थी।

अब भेड़िया बन गया था पांचवां बूढ़ा. दिनभर उसकी बैठक चलती. चमचे खुद ब खुद उसके घर जा पहुंचते. चुपचाप चढ़ावा चढ़ा आते. वह सुबह से शाम तक शिकार फांसता. दिनभर अपने दांत मांजता. अपने पंजे पैसे करता. यश और धन दोनों हाथों से बटोरता रहता.

देखते ही देखते वह बहुरूपिया, अजगर में तब्दील हो गया. सब कुछ अपनी गुंजलक में समेटने लगा. जिसे वह पकड़ लेता, वह फिर भला कैसे छूटता. विरोधियों को समूचा लील जाता. डकार तक नहीं लेता.

उसकी सोलहों आने चल रही थी. उसकी छल छद्म विद्या उन चारों की छाती पर मूंग दल रही थी. नित्य प्रति उसका सम्मान होता. मीडिया गुण गान करता. उगता सूरज था वह. कोई पार्टी उसे टिकिट देने का मन भी बना रही थी. वे चारों बूढ़े गुमनामी की चादर तले दबे जा रहे थे, बेचारे.

अब बिना काम के हो गये थे चारों. लोग-बाग पांचवें के पास जाने लगे थे. शहर के चारों ज़ोन, मध्य क्षेत्र सहित उसके अधिकार में थे. सर्व शक्तिमान हो गया था पांचवां बूढ़ा. पुलिया पर उसकी उपस्थिति अब न के बराबर थी.

एक दिन ये चारों पांचवें के घर मिलने जा पहुंचे. उसके ठाठ-बाट देखकर वे चारों दंग रह गये. वह बूढ़ा शान से झूला झूल रहा था. उसका बगीचा रंग-बिरंगे देशी-विदेशी फूलों से फूल रहा था. विदेशी कालीन था. नाशते में रबड़ी मलाई थी. उसने अपनी माया खूब फैलाई थी.

“अजी किधर का रास्ता भूल गये आप लोग. मुझे ही बुलवा लिया होता” - झूले पर बैठे ही बैठे पांचवां चिल्लया. वह हो-हो कर हंसा और झूले में ही पसर गया.

चारों बूढ़े स्तब्ध थे. पांचवें के सामने अपने आपको बौना महसूस कर रहे थे. बैठने के लिए अपनी-अपनी जगह तलाश रहे थे. पांचवें बूढ़े ने एक टूटी-फूटी बेंच की तरफ इशारा किया तो वे उस पर बैठने की जुगत भिड़ाने लगे.

बेंच के चारों पाये ढीले थे. वे बैठते, इसके पहले गिर पड़ते. गिरते, फिर बैठते. बेंच स्थिर थी क्या जो वे उस पर बैठने में सफल होते. वह बूढ़ा फिर हंसा, हंसते-हंसते लोटपोट हो गया. उसकी आंखों से आंसू बह निकले. उसके साथ उसके बगीचे के पेड़-पौधे, फूल-पत्ते सब ठठाकर हंस रहे थे.

इधर इन चारों की रुलाई फूट पड़ी थी. उनकी आंखों से अश्रुधारा बह चली थी. कंठ अवरुद्ध हो गया था. ऐसी अपमानजनक स्थिति में वे खून का घूंट पीकर रह गये थे बेचारे. उन चारों की

हालत उस हिलती हुई बेंच जैसी हो गयी थी. अब वहां से निकल भागने में ही उन्होंने अपनी भलाई समझी. जोंक, अजगर, सियार, भेड़िया उन्हें घेरे खड़े थे. कोई रास्ता उन्हें सूझ ही नहीं रहा था. एक बड़ा सा डील डौल वाला कुत्ता उनकी ओर झपटा तो वे सब भाग खड़े हुए. मरते-जीते, गिरते-पड़ते भाग रहे थे वे. पांचवें बूढ़े पर हंसी का दौरा पड़ा था. वह वहीं से तालियां बजाकर कुत्ते को उकसा रहा था. एक एक कर सभी बूढ़े एक नाले में कूद गये. ‘जान बची तो लाखों पाये, लौट के बुद्धू घर को आये’, वाली कहावत उनके साथ सच हो गयी थी.

दूसरे दिन का वाक्या अजीब था. पांचवां समय से पहले आकर उस पुलिया पर लंबा लेट गया था. उन चारों को बैठने के लिए तिल भर भी जगह शेष नहीं थी. उन्होंने उसे उठाने की भरपूर कोशिशों की पर वह बूढ़ा टस से मस नहीं हुआ.

चारों ने मिलकर उसे घसीटा तो वह बचाओ-बचाओ चिल्लाने लगा. आवाज़ें सुनकर भीड़ इकट्ठी होते देख, वे चारों पतली गली से भाग निकल. पांचवें ने किसी कामी राजा की भांति उनकी राज गद्दी हथिया ली थी.

उन चारों को पांचवां बुरी तरह दौड़ाने लगा. वह पूरा शैतान बन गया था. उसके बड़े-बड़े नाखून और सिर पर लंबे-लंबे बाल उग आये थे. आंखों में शैतानी चमक भर गयी थी. लंबे-लंबे दांत और मस्तक पर तीसरी आंख निकल आयी थी. ‘जल तू, जलाल तू, आई बला को टाल तू’ कहते हुए वे चारों सिर पर पैर रखकर भागे जा रहे थे.

वे बेतहाशा दौड़ रहे थे. एक शैतान को पछियाते देख उनकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी थी. आखिर इंसान थे, वे शैतान के सामने कब तक भागते.

शैतान ने सबसे पहले एक फिसड़ी बूढ़े को उठाया और उदरस्थ कर लिया. उसके बाद दूसरा, तीसरा फिर चौथा भी शैतान की बड़ी आंत में समा गये. उनका वजूद उस शहर में हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो गया.

कालांतर में पांचवें बूढ़े का फिर एकक्षत्र राज था. शहर उसकी मुट्ठी में और सबकी नकेल उसके हाथ में थी. उस पुलिया और उस शहर का वह अकेला वारिस रह गया था.

कहते हैं कि पूरे शहर में पांचवें बूढ़े का सिक्का आज भी चल रहा है और चारों बूढ़ों का नाम लेवा भी वहां अब कोई नहीं रह गया है.

एम.आई.जी, ८ विजयनगर, जबलपुर (म.प्र.) ४८२००२

फोन- ०९३०१८२२७८२, ०९३०११२३९५८

एक नये अध्याय की शुरुआत

उसे लगा था कि आसमान उसकी मुट्टी में आ गया है. वह खुले आकाश में उड़नेवाले किसी पांखी की तरह, आकाश की ऊंचाइयों को मापने लगेगा. सच ही में ऐसा हुआ. उसने पैंतीस सालों की नौकरी से निजात पा ली थी. उसने महसूस किया था कि इतने साल उसने एक पिंजरे में पड़े हुए से निकाल दिये हैं. उसे लगा था कि वह खुली हवा में सांस लेने लगा है. नौकरी के दिनों का स्मरण अब वह करना नहीं चाहता. उसे लगा था कि वह मुक्त हो गया है. रिटायरमेंट को उसने सहजता से लिया था. वह सहज हो गया था. वरना, उग्रभर नौकरी के चक्रव्यूह में वह हाथ-पांव मारने की प्रक्रिया में रहा है.

उसके गले में फूल मालाओं का अंभार लग गया था. अंतिम दिन विदाई के वक्त उसका मन उदास ज़रूर हुआ था, लेकिन कुछ ही दिनों के बाद, उदासी को उसने उतार फेंका था. उसने फिर ऐसी मुक्ति की भीतरी मन से कितनी बार परिकल्पना की होगी. उसे ऐसे लगता था कि वह इस कैदखाने से कहीं भाग निकले एकाएक, लेकिन ऐसे भला भागा जाता है? वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर अंधे घोड़े की तरह भागता रहा था और हांफता रहा था.

उस दिन उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा था. उसकी ज़िंदगी में वरना अनेकों काले अध्याय भी आये थे. वह रिटायर होने का सपना कबसे पाले हुए था. दिन महीनों में तब्दील होने लगे थे. रिटायरमेंट पर अन्य लोगों की तरह उसे भी सरकारी पैसे मिलने थे. उसने इसके लिए सपने भी देखे थे. लेकिन ऐसा हुआ नहीं. उसने सोचा था कि दफ्तरी कामों में देरी होना स्वाभाविक होता है. वह प्रतीक्षा करने लगा था. चार महीनों का अंतराल बीता तो उसका माथा ठनका था. वह खिन्न हो उठा था. वह छटपटाने लगा था.

एक दिन पत्नी ने उसे झकझोरा था, 'कब तक ऐसे बैठे रहोगे. हेड ऑफिस जाकर पता तो करिएगा.....?'

'तुम क्यों चिंता करती हो? दफ्तरी कामों में इतनी देर तो हो ही जाती है. कुछ दिन और देख लेते हैं.' उसने पत्नी को मशविरा दिया था.

'मुझे तो चिंता खा रही है. पेन्शन ही शुरू हो जाती. चार

पैसे तो आने शुरू हों. क्यों आप इसे सीरियसली नहीं लेते?'

'ऐसा करते हैं, एकाध चिट्ठियां लिख कर देखते हैं. चेयरमैन के नाम. ऐसे तो चुप बैठने से कुछ नहीं मिलेगा. कोई कार्यवाही तो पड़े.'

'जो भी करना है करिए.... लोगों को तो तुरंत भुगतान हो जाता है. खन्ना साहब आपके बाद में रिटायर हुए हैं. उन्हें तो सब कुछ मिल गया है.'

'पता नहीं. कैसे उसे सारा भुगतान हो गया?'

'वह घर में कहां बैठा रहा होगा... भागदौड़ करके ही कुछ मिलता है. पता है पटियाला के कितने चक्कर लगाये हैं उसने?' वह खीझ उठा था, 'दफ्तरवालों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं बनती?'

'चक्कर तो लगाने ही पड़ते हैं. ... खन्ना साहब से एक बार

११ सैली बलजीत ११

मिलकर तो देखें', पत्नी बोली थी.

'उससे मिलकर क्या होगा?'

'कोई मशविरा ही देगा. मैं तो कहती हूं..... उससे मिलिए तो एक बार.'

'मैं तो हेड ऑफिस में चिट्ठियां लिखूंगा.....'

'पिछले हफ्ते भी कह रहे थे..... आप.... जो भी करना है... करिए.' पत्नी खीझ उठी थी.

उसने दूसरे ही दिन रजिस्टर्ड डाक से हेड आफिस में संबंधित अधिकारियों को चिट्ठियां लिखी थीं. अखबारों में भी चिट्ठियां भेजी थीं. उसने महसूस किया था कि उसके साथ अन्याय हो रहा है. उसने ऐसा करके भीतर तक राहत महसूसी थी. कितने दिन निकल गये थे, पटियाला से उसके पत्रों का कोई उत्तर नहीं आया था. उसे व्यवस्था का ढांचा ही चरमराता हुआ लगने लगा था. वह भन्ना उठा था. आक्रोश मुट्टियों में दम तोड़ने लगा था, उसकी भृकुटियां तन गयी थीं. वह आग बबूला हो उठा था. उसने महसूस था कि आखिर व्यवस्था कहां से चरमरायी है.....? कहीं तो कुछ गड़बड़ी हुई है. उसने सोचा था, उसकी चिट्ठियां अलीबाबा के चिराग की तरह कारगर सिद्ध होंगी. उसके सामने एकाएक दफ्तरी तिलिस्म खुलने लगे थे. अकारण ही इतने दिनों तक

भूमजाल में रहने की त्रासदी से वह हर स्थिति में बचना चाहता था। उसकी आंखों में एकाएक अपने कुलीग खन्ना का चेहरा एकाएक तैरने लगा था। निस्संदेह उसके अनुभवों से उसे भी कुछ सीखना चाहिए। आखिर उसके पास ऐसी कौन सी जादुई छड़ी है?

एक दिन उसने पत्नी के लाख इस्सरार पर खन्ना के घर जाने का मन बनाया था। कई दिनों से उससे भेंट भी नहीं हुई थी। खन्ना उसी कॉलोनी में तीसरी लेन में रहता है। वह भी उसकी तरह एस.डी.ओ. के पद से रिटायर हुआ है।

‘बड़े दिनों से आने की सोच रहा था.’ वह बोला था।

खन्ना ने कहा था, ‘कुछ मिला? सात महीने तो हो ही गये हैं ना रिटायर हुए.’

‘चिट्ठियां लिखी हैं....हेड आफिस में.....’

‘कुछ हुआ चिट्ठियों से?’

‘अभी तक तो नहीं.....’

‘होगा भी नहीं.....किस युग की बातें करते हो शर्माजी?’

‘मैं तो इनको रास्ता दिखा दूंगा. कोर्ट कचहरियां इन्हीं कामों के लिए तो बनी हैं. नोटिस दिलवा देते हैं वकील से.’

‘क्यों फ़िजूल पंगे में पड़ रहे हो. पटियाला कितने चक्कर लगाये हैं?’

‘एक बार गया था.....तीन महीने पहले.....’

‘मुझे देखिए....दो महीनों में सात बार चक्कर लगा कर आया हूं पटियाला के.....ऐसे होते हैं काम.....घर में कब तक बैठे रहोगे?’

‘आपको सुना है. सारा भुगतान हो गया है.....’

‘बिलकुल ग्रेच्यूटी, पेन्शन... छुट्टी के पैसे..... अगले हफ्ते प्रॉवीडेंट फंड भी मिल जायेगा... मैं तो उनके सिर पर चढ़ा रहा था..... हर हफ्ते पटियाले...देखा ... ऐसे होती है कार्यवाही.....’

‘मुझे बताइए.....क्या करना चाहिए.....?’

‘पंडित जी...कोर्ट कचहरियों को छोड़िए.....हेड ऑफिस जाइए... देखना कैसे इनकार करते हैं भला ? कोई नहीं पूछता. चेयरमैन का कोई जवाब आया? किस दुनिया में जी रहे हो पंडित जी.....?’

‘नहीं तो.... रजिस्टर्ड डाक से डाला था.....’

‘तो क्या सोचते हो अब?....मैं तो कहता हूं....सबेरे ही निकल लो..उनके सिर पर जब तक चढ़ के नहीं बैठोगे तो काम नहीं होगा. ढीले हुए तो देख लेना. लटका देंगे. वहां की वर्किंग देखी है?’ खन्ना कहता गया था. वह सुनता रहा था.



सैली वलजोत

आज़ादी से दो साल उपरांत, पंजाब के शहर बटाला में,
विद्युत इंजीनियरिंग

लेखन : देश की शीर्षस्थ पत्रिकाओं ‘हंस’, ‘सारिका’, ‘साप्ताहिक हिंदुस्तान’, ‘गंगा’, ‘संचेतना’, ‘कथाबिंब’, ‘कथाक्रम’, ‘कादंबनी’ इत्यादि में कहानियां प्रकाशित.

प्रकाशन : ‘अपनी-अपनी दिशाएं’, ‘गीली मिट्टी के खिलौने’, ‘अब वहां सन्नाटा उगता है’, ‘बापू बहुत उदास है’, ‘तमाशा हुआ था’, ‘मुखौटों वाला आदमी’, ‘घरौंदे से दूर’, ‘अंधा घोड़ा’, (कहानी संग्रह) : ‘मकड़जाल’ (उपन्यास) तथा ‘धूप में नंगे पांव’, ‘कहर के दिन’, तथा ‘खूबसूरत शहर और चीखें’ (संपादिक कहानी संग्रह) : ‘नागफ़नियों के देश में’ (नाटक), ‘टप्परवास’ (कविता) तथा ‘मेरे आईने में’ (संस्मरण) तथा ‘आज के देवता’ (लघुकथा संग्रह) शीघ्र प्रकाश्य.

सम्मान : पंजाब के अग्रगण्य कथाकारों में एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर से एफ.फिल. हेतु कहानियों पर शोध कार्य संपन्न. देशभर से अनेकों सम्मान प्राप्त. भारत के राष्ट्रपति से पंजाब हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा सम्मान प्राप्त.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन

उसे लगा था, सच ही उसने सात महीनों का समय गंवा दिया था.

उसने खन्ना का दिखाया तिलिस्मी रास्ता खोज निकाला था. लेकिन उसने भीतरी मन से आत्मघाती समझौता किया था. लेकिन, उसकी ज़रूरतों का पहाड़ उसे टीसने लगा था. ऐसे समय

में इन्सान के चारों तरफ़ ज़रूरतों के अनेकों गुंबद एकाएक ही उभर जाते हैं. छोटी बिटिया की शादी अभी उसे निपटानी है. बेटे की पढ़ाई के लिए भी पैसों की ज़रूरत है अभी.....और उसकी झोली तो खाली है. रिटायरमेंट के बाद तनख्वाह मिलनी भी बंद हो गयी थी. पेन्शन की नन्हीं सी किरण दिखी थी. वह लगता है भड़भड़ाकर बुझ जायेगी. बेटे के विदेश में जाकर पढ़ाई करने का सपना भी तो उसे इन्हीं पैसों से पूरा करना है.

पिछले हफ़्ते वह अपने पुराने बिजली घर में गया था. उसकी आंखों के सामने पुराने दिनों के नक्श उभर आये थे. यहीं तो उसने अपनी नौकरी के लगभग बीस साल गुजारे होंगे. मेनगेट के पासवाला आदमकद ट्रांसफॉर्मर उसी तरह सिर उठा खड़ा हुआ दिखा था. उसे स्मरण है, इसी जगह पहले वाले ट्रांसफॉर्मर को जलने से कोई भी बचा नहीं पाया था. आग की लपटें आसमान को छूने लगी थीं. उसने देखा था, बड़ी सी क्रेन से ट्रांसफॉर्मर के अलग अलग हुए पुर्जों को उठाया जा रहा था, उसने दूर से ही देखा था. कई पुराने साथी उससे बतियाने लगे थे. उसकी आंखों में पुराने दिन सरसराने लगे थे. उसे स्मरण है, गर्मियों के मौसम में बार-बार इसीलिए यार्ड के चक्कर लगाने पड़ते थे कि ट्रांसफॉर्मर का कूलिंग सिस्टम ठीक से काम तो कर रहा है. इसके लिए बड़े-बड़े पंखों का भरी दोपहर में चलना लगभग सुनिश्चित होता था. उसे स्मरण है, अपनी औलाद की तरह ही इन उपकरणों का ध्यान रखना पड़ता था. इतनी निष्ठा से निभायी ड्यूटी उसे आज स्मरण हो आयी थी. उसे यहीं से पदोन्नति मिली थी.

वह अफ़सर बन गया था.

बिजली के बड़े-बड़े उपकरणों से उसका नाता टूट गया था, उसे अब फ़िल्ड में लगा दिया गया था. उसे लगा था....उसने निष्ठा से अपनी ड्यूटी निभायी थी, पूरी नौकरी में. कौन देखता है? फिर ऐसी निष्ठा का कोई मूल्य है? उसने भीतर तक थका हुआ सा महसूस किया था. दफ़्तर तंत्र की विभीबिका ने उसे तोड़ दिया था.

घर की आर्थिक स्थिति भी भुरभुराने लगी थी.

हर क्षण पत्नी का उस पर खीझना भी थमा नहीं था.

अमित बेटे के सपने एकाएक दम तोड़ने हुए प्रतीत हुए थे. छोटी बेटा की शादी के लिए भी अभी दौड़धूप करनी थी. सबसे बढ़कर पूजा के सपनों को उसने पलोसना था. पूजा का उदास चेहरा वह कभी देख ही नहीं सकता.

हेड ऑफिस में वह अब नियमित चक्कर लगाने लगा था.

उसे थोड़ी-सी आशा की किरण अब दिखने लगी थी. इन दिनों उसकी पिंडलियां फूल गयी थीं, सीढ़ियां चढ़ते-उतरते हुए.

एक दफ़्तर से दूसरे दफ़्तर तक फ़ाइलों का पुलिंदा थामे हुए, उसे स्वयं पर ताज्जुब हुआ था,

उस दिन, बगल में फ़ाइलों का पुलिंदा थामे वह लिफ्ट में नीचे आने लगा तो लिफ्ट में खड़े-खड़े किसी अपरिचित आदमी से बतियाना अच्छा लगा था. उसने कहा था, हेड ऑफिस के क्लर्कों का कमाल देखो. हम अफ़सर यहां आकर चपरासी हो गये हैं. और चाबी के खिलौने की तरह दौड़ रहे हैं.

‘कहां काम करते थे आप?’ उस शख्स ने पूछा था.

वह बोला था, ‘मैं सुजानपुर में एस.डी.ओ. था. सात महीने हो गये हैं.... रिटायर हुए. बड़ा मुश्किल काम है जी. अपना ही पैसा निकलवाना.’

‘मुझे देखिए.....मैं एकसीयन था.... यहां आकर फाइलें उठानी ही पड़ती हैं.. ना उठायें तो हो गया काम.....क्या समझे....’

वह खीझ उठा था, ‘लगता है...अफ़सरी हमारी झूठी थी. झूठा रुतबा था.’

यहां तो बड़े-बड़े अफ़सरों को बगल में फाइलें उठाये. एक दफ़्तर से दूसरे दफ़्तर तक एडियां रगड़ते हुए देखा है जी. मुझे देखिए. पांचवां चक्कर है. कौन पूछता है? अभी जाने कितने चक्कर और लगे, वह अपरिचित शख्स अब परिचयवाला शख्स लगने लगा था.

‘आपको कुछ मिला अभी तक?’ उसने पूछा था.

‘बस लगभग काम हो गया है.....इतनी भागदौड़ करके कुछ हासिल हो जाय. गनीमत है.’ उस शख्स ने लिफ्ट से बाहर आते हुए कहा था.

वह उसके साथ-साथ चलने लगा था.

वे दोनों बाहर आ गये थे, फोटो प्रतियां करवाने के लिए. बाहर आकर सबसे पहले उन्होंने चाय पी थी. वे लगभग टूट गये थे.

उसने सोचा था कि सच ही उसे कोई बगल में फ़ाइलों का पुलिंदा थामे हुए यहां देख ले तो निस्संदेह उसको चपरासी समझने में कोई भूल नहीं होगी. दफ़्तर में तो उसने जमकर अफ़सरी दिखाई है. ऐसे कई चपरासी उसकी कॉलबेल से ही आगे-पीछे घूमते थे. तब ज़िंदगी का अपना ही रुतबा होता था. सरकारी जीप कोठी के सामने खड़ी रहती थी. कितनी सुविधाओं का एकाएक झोली से छिटक कर दूर जा गिरना, वह सह नहीं पाया था.

इस बार वह तिलमिलाया नहीं था. उसने ऐसे ही दो-तीन चक्कर आज से पांच महीने पहले यहां के लगाये होते तो अब तक

उसे ग्रेच्युटी, पेन्शन, प्रावीडेंट फंड का भुगतान हो गया होता। लेकिन अभी तो उसने जाने कितनी बार आठ मंजिला इमारत की सीढ़ियां चढ़ना-उतरना है। उसे बगल में फ़ाइलें दबाये हुए, स्वयं पर बेहद गुस्सा आया था। लेकिन क्या करता ?

वह वापस लौट आया था।

पठानकोट में उसकी दुनिया है। उसके सपनों के गुलमोहर यहीं तो फूलने हैं। पूजा को राहत मिली थी। उसके काम उसे बनते हुए दिखे थे। वह प्रफुल्लित हो उठा था। उसने खन्ना साहब के मशविरे को मानकर निस्संदेह स्वयं को टूटने से बचा लिया है। सच ही घर के लिए, पैसे का धरातल होना ज़रूरी होता है। दो महीने और कुछ ना होता। कहां जाता वह? उधार मांगने की कगार पर निस्संदेह ही पहुंच गया होता वह। उसे सपने रंग लाते हुए लगे थे।

वह पेन्शन के कागज़ पत्नी को दिखाते हुए पुलकित हुआ था।

महीनों की मानसिक यंत्रणा से लगा था, मुक्ति मिल गयी है। घर में उत्सव जैसा वातावरण लहरा उठा था।

वह पेन्शन के कागज़ संबंधित दफ़्तर में स्वयं लेकर गया था। ढांगू रोडवाले बिजलीघर के पास ही तो है दफ़्तर। स्कूटर को खड़ा करते वक़्त उसने देखा था, बिजली घर के कर्मचारी ट्रांसफॉर्मर पर चढ़े हुए सफ़ाई करने में रत थे। भाटिया नीचे खड़े-खड़े अपने कर्मचारियों को हिदायतें दे रहा था। भाटिया अभी तक जूनियर इन्जीनियर ही है। तब भी वह इसी पोस्ट पर था। उसे स्मरण है, जब बिजली घर के बड़े ट्रांसफॉर्मर को आग लगी थी, तब वह यहां नया-नया ही आया था। उसने किस तरह ट्रांसफॉर्मर को धू-धू जलने से बचाने हेतु तमाम कोशिशें दांव पर लगा दी थीं। लेकिन ट्रांसफॉर्मर जलने से बच नहीं पाया था। उसकी निष्ठा की सभी ने प्रशंसा की थीं। इसके ऐवज में उसे निष्ठावान कर्मचारी का खिताब अवश्य मिल गया था। उसे स्मृतियां टीसने लगी थीं।

भाटिया ने उसे देख लिया था।

वह बोला था, 'साहब जी.....कैसे आना हुआ? पेन्शन इत्यादि का कुछ बना?'

उसने कहा था, 'तभी तो आया हूं.. पेन्शन के कागज़ बाई हैंड ले आया था पटियाला से।

'अच्छा हुआ.....चलो दिमागी टेन्शन तो दूर हुई.....'

'बहुत परेशान था....पिछले दिनों.....'

'अब टेन्शन नहीं लेनी.....मजे करो.....बहुत सेवा कर ली महकमे की.'

'तब ज़माना अच्छा था.... आज नौकरी मुश्किल हो गयी है. भाटिया'

'क्या करें.....नौकरी तो करनी ही है ना?....दो साल रह

गये हैं. निकल जायेंगे....आप तो अच्छे समय पर फ्री हो गये हैं....' भाटिया ने कहना जारी रखा था। इन सालों के बीच वह लगभग गंजा हो गया था।

उसने भाटिया से अलविदा ली थी। उसके दिल में आया था कि बिजली घर के भीतर जाकर पुरानी स्मृतियों को ताज़ा करे लेकिन....शाम का वक़्त होने के कारण हेडक्लर्क के सीट पर मिल जाने की इच्छा से, वह वहां से आ गया था।

हेडक्लर्क सीट पर नहीं मिला था। शनिवार और इतवार की छुट्टियों के कारण अब उसे सोमवार तक प्रतीक्षा करने की यंत्रणा भोगनी थी।

वह उदास हो उठा था। अब हेडक्लर्क की शिकायत किससे करे?

आधा घंटा सीट से पहले उठ जाना, संभवतः उसका अधिकार रहा होगा। उसने स्कूटर स्टार्ट कर दिया था। घर आकर उसे राहत मिली थी।

दूसरे दिन, खन्ना घर आया था। वह भी खुश हुआ था कि उसका लगभग काम हो गया था।

'देखा...? हुआ ना काम? तुम तो हताश हो रहे थे. चार चक्कर पटियाला के ही लगे है. क्या फ़र्क पड़ा? ऐसे होते हैं काम. पंडितजी अपने पैसों के लिए ही दौड़धूप की है ना? खन्ना लच्छेदार भाषण देने लगा था।

वह बोला था, 'पर... वहां जो हालात है.... उफ़.. कहां... कहां नहीं भागा मैं?'

'चल छोड़ अब....काम तो हो गया ना? मैंने ठीक ही कहा था ना?'

'सच.....मैं ही फ़ितूर में था. कोर्ट कचहरियों के चक्करों में पड़नेवाला था...पर....खन्ना.....महकमे का कोई फ़र्ज नहीं बनता?.....'

'किस युग की बातें करते हो पंडित जी.....?'

वह खन्ना से कह देना चाहता था कि सच ही पटियाला के चक्करों के दिनों वह भीतर तक बौना हो गया था। किस तरह मामूली से क्लर्कों के आदेशों पर वह चाबी वाला खिलौना हो गया था। कठपुतली की तरह नाचने के लिए विवश हो गया था। लेकिन वह चुपा गया था। उसने फिलहाल खन्ना का मुंह मीठा करवाना था।

उसने पत्नी को मिठाई लाने का आदेश दिया था।

✍️ १२८८, लेन-४, श्रीरामशरणम् कॉलोनी,

डलहौजी रोड, पठानकोट (पंजाब)-१४५००१

फोन - ०१८६ - २२२९४४०

अव्यक्त

आधी रात का वक्त था और आसमान में आधा चांद चमक रहा था. फ़िज़ा में अजीब-सी धुंध फैली थी. शायद दावानल का धुआं था. रेल की पटरियां खड़क रही थीं. रेल आ रही थी या जा रही थी कुछ मालूम नहीं था. जुगनू आपस में बतियाते इधर-उधर घूम रहे थे. क़ब्रस्तान के नीलगिरी के पेड़ों पे लटके चमगादड़ ना जाने कौन-सा राज़ उजागर कर रहे थे. ठंड का मौसम था और रात के आकाश में जुगनू की तरह दिप-दिप करता हवाईजहाज़ चला जा रहा था. पूरे माहौल में रातरानी के फूलों की खुशबू फैली हुई थी. दूर कहीं चौराहे पे एक कुत्ता अपने साथियों को पुकार रहा था. चर्च के क्रॉस पे अटकी पतंग हवा के हर झोंके के साथ कांप कांप जाती थी.

अपनी धड़कनों को सम्हाले हाथ में लालटेन लिये मैं आगे बढ़ रहा था. हवेलीनुमा घर का दरवाज़ा खुला ही था. अम्मा कहीं गयी थीं. सब लोग गहरी नींद में थे. रात के सन्नाटे में झींगुरों का शोर डरावना लग रहा था. अपने डर को भूलकर मैं अम्मा की गठरी तलाश कर रहा था जिसमें लकड़ी का बक्सा है. उस लकड़ी के नक्काशीदार बक्से में एक मखमली थैली है और उस थैली में सोने-चांदी के कई सिक्के हैं. मैं किसी बच्चे की तरह उस भूलभुलैया में सिक्के की थैली तलाश कर रहा था लेकिन मुझे वह थैली कहीं नहीं मिली. एक पुरानी दीवार पे छिपकलियों की चहल-पहल थी. आगे के कमरे में बहुत अंधेरा था. उस कमरे में बहुत पुरानी पेंटिंग्स लगी थीं. जगह-जगह मकड़ी के जाले थे और धूल भी बहुत थी. आगे एक तहख़ाना था जहां एक कोने में एक्वेरियम रखा था. वहां कांच की पुरानी आलमारी में कुछ दुर्लभ किताबें थी. मिट्टी के फूलदानों में मोरपंख सजे थे. सिलाई-कढ़ाई का सामान फर्श पे बिखरा पड़ा था. एक कोने में ग्रामोफोन और कुछ रिकॉर्ड पड़े थे. पूरा घर किसी म्यूज़ियम की तरह लग रहा था.

अगर अम्मा का तोता मुझे देख लेगा तो वह शोर मचाने लगेगा लेकिन वह तोता मुझे कहीं नज़र नहीं आया. लगता है अम्मा तोते को अपने साथ लेकर गयी हैं. मैं पूरी हवेली में किसी भटकती हुई आत्मा की तरह टहल रहा था लेकिन मुझे सिक्कों की थैली नहीं मिली. पिछवाड़े में कहीं मोगरा चटके थे जिसकी महकार फ़िज़ा में थी. नीम के पेड़ पे हरे रंग का परचम पंख कटे परिंदे की

तरह फड़फड़ा रहा था. तभी एक चूहा कुछ गुनगुनाते हुए मेरे पास से गुज़र गया. इतनी बड़ी हवेली तो मैंने फ़िल्मों में देखी थी! मेरे कानों को अम्मा के लोकगीत गुनगुनाने की आवाज़ सुनायी दे रही थी. मैंने उसकी पायल की झंकार भी सुनी. मैं इन आवाज़ों से विपरीत दिशा वाले कमरे में चला गया. वहां एक पुरानी मेज़ पे कुछ कॉकरोच चहलक़दमी कर रहे थे. ऊपर के दराज़ में उर्दू की एक किताब थी जिसे दीमक लग चुकी थी. नीचे के दराज़ में मुझे वह थैली मिल गयी. “कहीं मैं ख़्वाब तो नहीं देख रहा...” ख़्वाब नहीं सच्चाई थी. सोने-चांदी के सिक्कों की थैली अब मेरे हाथों में थी. उस थैली में अजीब-अजीब तरह की चीज़ें थीं मसलन सीप, शंख, मोती, कंचे, दुर्लभ पत्थर, लकड़ी का कंधा, पुराने ज़माने की घड़ी, मोरपंख, रत्न और कुछ पुराने ज़ेवर. लेकिन यह क्या...अगले ही पल सारी चीज़ें मिट्टी में बदल गयीं. ऐसा लगा जैसे मैं मकड़ी के जाल में फंस गया हूं. हां, मैं सपना देख रहा था जबकि सच्चाई तो कुछ और ही थी.

॥ अयाज़ ख़ान ॥

सर्दियों की धूप तापने के लिए सब लोग अपने-अपने आंगन में बैठे थे. पास ही के किसी हवाईअड्डे से एक हवाईजहाज़ ने उड़ान भरी थी जो आसमान के नीले समंदर में व्हेल मछली जैसा लग रहा था. अम्मा भी धूप तापने के लिए दरवाज़े की देहरी पे बैठी थीं. अम्मा न जाने क्या-क्या बड़बड़ा रही थीं. कुएं की घिरनी का शोर यहां तक आ रहा था. मैं पिछले पच्चीस सालों से अम्मा को देख रहा था लेकिन आज भी वह जैसे की वैसी है. उनका झुर्रीदार चेहरा पुरानी सभ्यता की लिपि जैसे लगता. उनके हाथों पे रंगें कुछ इस तरह उभर आयी थीं कि उन्हें एक-एक करके गिना जा सकता था. मुझे उनके हाथों की नसें सड़क मार्ग के भौगोलिक रूढ़ चिन्ह जैसे लगतीं. जिस झोपड़ीनुमा कमरे में अम्मा रहती थीं वहां और कोई नहीं रहता था. अम्मा के रिश्तेदार हमारे घर के बाजू में रहते थे. अम्मा का कमरा हमारे घर के सामने ही था. बीच में से एक पतली-सी पगडंडी अंदर बस्ती तक गयी थी.

दोपहर को अम्मा तसबीह लिये बैठ गयीं. तसबीह सोने की थी. नहीं....तसबीह सोने की नहीं है. उस डरावने सपने की

तरह मेरा वहम ही था कि तसबीह सोने की है. शाम को अम्मा फिर बड़बड़ाने लगीं कि वह भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय अपने परिवार से बिछड़ गयीं. अम्मा अक्सर अपने कमरे के पीछे लगी करेले की बेल से करेले चुना करतीं. अम्मा की तन्हाइयों का साथी उनका तोता था वरना अम्मा के घरवालों के लिए वह एक मुसीबत थीं. सुबह-शाम उस घर की छोटी लड़की फ़िज़ा ख़ाला को रोटी दे जातीं. कहते हैं कि ख़ाला ने फ़िज़ा को कृत्रिम श्वास देकर एक नयी ज़िंदगी दी थी. अब तो फ़िज़ा को भी फ़ुर्सत नहीं थी अम्मा के लिए. पिछली रात अम्मा चिल्लाती रहीं कि फ़िज़ा मुझे ठंड लग रही है, कंबल ओढ़ा दे लेकिन फ़िज़ा तो ख़्वाबों की दुनिया में खोयी थी. किसी ने भी अम्मा की चीख नहीं सुनी. सुबह की अज़ान तक अम्मा चिल्लाती रहीं.

उस दिन मुझे पोस्ट ऑफिस में कुछ काम था. सीढ़ियां उतरकर जैसे ही मैं नीचे आया तो देखा अम्मा फ़ुटपाथ पे भीख मांग रही हैं. मैं लगभग दौड़ते हुए वहां गया तो देखा वह अम्मा नहीं कोई और थी. उस बुढ़िया ने मुझे देखकर मेरे आगे हाथ फैलाया. वह वाकई भूखी लग रही थी और भूख की वजह से उसे चक्कर आ रहे थे. उस वक़्त मेरे पास बुढ़िया को देने के लिए कुछ भी नहीं था.

“यह घड़ी रख लो...सोने की है...इसे बेच देना.” मैंने एंटीकनुमा घड़ी बुढ़िया को दिखाते हुए कहा.

“यह घड़ी मेरे किसी काम की नहीं है.” बुढ़िया अविचल स्वर में बोली.

“एक मिनट”, कहकर मैं अपने बैग में पैसे तलाशने लगा. जैसे ही मैंने उसे पैसे देने के लिए सिर उठाया वह आगे जा चुकी थी. मैं हाथ में चंद सिक्के थामे उसका पीछा करने लगा. आईने की एक दुकान के सामने आकर मैं ठिठक गया कि कोई मुझे देख तो नहीं रहा. मैं बड़ी हिम्मत करके कदम बढ़ा रहा था. आगे घड़ियों की एक दुकान थी जहां पेंडुलम झनझना उठे. मुझे अपनी घड़ी का ख़याल आया. मेरा दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था. मैं मूर्तिवत वहां खड़ा रहा. बुढ़िया भीड़ में कहीं खो गयी.

अम्मा की बीमारी से उसके घरवाले इतने त्रस्त थे कि वह उसे मरने की बद्दुआएं देते थे. अम्मा सब देख-सुन सकती थीं. अक्सर अम्मा बड़बड़ाना करतीं - “थोड़ी देर कोमा की हालत में अपनी क़ब्र में आराम करूंगी फिर कोई नया ज़िस्म लेकर आऊंगी...” उस दिन जब अम्मा रोटी खा रही थीं तो उसकी रोटी बकरी ले भागी. किसी ने भी अम्मा की ख़बर नहीं ली. अम्मा उस दिन भूखी-प्यासी न जाने क्या-क्या बड़बड़ाती रहीं-



अख़बार ख़बर

२७ नवंबर १९८०,

स्नातक, फैशन डिजाइनिंग में डिप्लोमा

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां एवं लघुकथाएं प्रकाशित.

संप्रति : स्वतंत्र लेखन एवं फैशन डिजाइनिंग.

“चुभती है दिल में चप्पल की कील तुम्हारे पैरों में हो या मेरे पैरों में.”

अम्मा बड़बड़ा रही थीं-

“मंदिर मस्जिद के झगड़े में बांट दिया भगवान को, धरती बांटी, अंबर बांटा, मत बांटो इंसान को.”

गर्मी ने दस्तक दे दी थी. प्लेटफ़ॉर्म पे गहमागहमी थी. ट्रेन छूटने ही वाली थी. एक बुढ़िया ट्रेन के दरवाज़े पे बैठी मुझे पुकार रही थी. एक लम्हे के लिए मैं उस बुढ़िया को देखकर चौंक गया कि कहीं यह अम्मा तो नहीं हैं. उस बुढ़िया का चेहरा हूबहू अम्मा जैसा था. बुढ़िया को हिचकी लग रही थीं. उसने अभी-अभी अचार और सूखी रोटी से अपनी भूख मिटायी थी. उसे प्यास लगी थी लेकिन किसी ने भी उसकी पुकार नहीं सुनी. सब लोग मोबाइल पे व्यस्त थे. मुझे देखकर उसने अपनी प्लास्टिक की गंदी-सी बोतल मेरे आगे बढ़ा दी. मैं उस बोतल पे अपना रूमाल लपेटकर पास ही के नल की तरफ बढ़ गया. नल खोलने पर उससे दो-तीन बूंद पानी टपककर फ़र्श पर फैल गया. ऐसा लगा जैसे कैनवास पे कोई चित्रकृति बन रही है. जब मैं अपने थरमस का पानी उसकी बोतल में उड़ेल रहा था तभी फ़रमान का फ़ोन आ गया - ‘कहने लगा कि अम्मा तेरे पास क्या कर रही हैं?’

इंजन की तेज सीटी से मेरे कान झनझना उठे. मैं फ़रमान की बात समझ नहीं पा रहा था. यह बुढ़िया अम्मा कैसे हो सकती है? इससे पहले कि मैं उस बुढ़िया को दोबारा देख पाता ट्रेन चल पड़ी थी. हवा में तैरती उसकी गंदी-सी बोतल भर नज़र आयी.

मुझे अम्मा कोई जादूगरनी लगती जिसने पिछले जनम में कई गुनाह किये हों और इस जनम में उसे उसके किये की सजा मिल रही हो।

फिर एक दिन अम्मा का तोता एक कुत्ता ले भागा. कहते हैं कि उस दिन तोते का पिंजरा खुला रहा गया था. हांलाकि पिंजरा खुला रहने के बावजूद तोता अम्मा को छोड़कर उड़ता नहीं था लेकिन उस दिन एक कुत्ते की नज़र उस पर पड़ गयी. अम्मा “मिट्टू-मिट्टू” कहकर चीखती रहीं लेकिन सब के सब पत्थर हो गये थे. उस दिन अम्मा बहुत रोयीं. एक मिट्टू ही तो था अम्मा का साथी. अगर मिट्टू ज़िंदा होता तो वह उड़कर उसके पास आ जाता. अम्मा आते-जाते पंछियों को मिट्टू के संदर्भ में देखा करतीं. मिट्टू भी उनसे इंसानों की तरह बतियाता था. मिट्टू के बिछोह में अम्मा बीमार पड़ गयीं. उन्हें सिगनल वाला रेलवे केबिन किसी मंदिर जैसा नज़र आ रहा था. अम्मा के होंठ पथरा गये. आंखें टकटकी लगाये रेलवे केबिन को निहारती रहतीं. पलकें तो जैसे झपकना ही भूल गयी थीं. “मिट्टू रेलवे केबिन पे बैठा है...” अम्मा बड़बड़ाने लगतीं. मैं अम्मा में दिलचस्पी लेने लगा. अम्मा मेरी रिश्तेदार भी थीं. मुझे अम्मा कोयले की ऐसी खदान नज़र आती जिसमें से हीरा निकलता हो.

सब कहते थे कि अम्मा कनवर्ट मुस्लिम हैं. उन्होंने इस्लाम कुबूल किया है. अम्मा के बारे में और भी कई अजीब-अजीब तरह की बातें हमारे गांव में फैली थीं. क्या अम्मा ने दूसरा निकाह किया है? अम्मा का नाम क्या है? अम्मा की कोई संतान है भी या नहीं? तरह तरह के सवाल सता रहे थे.

उनकी आंखें सड़क पे टकटकी लगाये न जाने किसका इंतेज़ार किया करतीं. कोई दुआ थी जिसे अम्मा बार-बार दोहराया करतीं. अब अम्मा ने बड़बड़ाना छोड़ दिया था. अम्मा सफ़ेद लिबास पहनने लगीं. अपने गुनाहों से तौबा करके रोने लगीं. मज़ारों पे जाने लगीं. नमाज़ और कुरान पढ़ने लगीं. सफ़ेद लिबास में वह फरिश्ता नज़र आतीं. सुबह-शाम अम्मा चिड़ियों से घिरी रहतीं. चिड़ियां अम्मा से न जाने क्या-क्या बातें करतीं. “एक ना एक दिन तो सभी को जाना है,” अम्मा चिड़िया से कहतीं. इस पर चिड़िया अम्मा की रोटी अपनी चोंच में दबा उड़ जाती. मानो कह रही हो - “तुम्हारा ज़िंदा रहना और मर जाना तो एक बराबर है अम्मा!”

अब अम्मा को ना तो गर्मी लगती थी और ना ही ठंडी. अब उनके लिए हर मौसम एक जैसा था. अम्मा की आंखें बारिश

में टपकते छप्पर जैसी हो गयीं.” कफ़नचोर..” अम्मा बुदबुदा रही थीं - “मौत के कुएं में बाइक चला रहा होगा.”

डाकिया आता और अम्मा के सामने से साइकिल की घंटी बजाता हुआ गुज़र जाता. चूड़ी बेचने वाली अम्मा को सलाम करके आगे बढ़ जाती. बच्चों की पतंग या गेंद उसके कमरे में आ जाती लेकिन अम्मा इस एहसास से भी बेख़बर थीं. “अल्लाहु अक्बर...” मस्जिद में अज़ान होती. “अल्लाहु अक्बर...अल्लाहु बहुत बड़ा है....” अम्मा बुदबुदा रही थीं. खुदा के नाम का विर्द उनके होंठो पे धड़कनों की तरह जारी हो गया. उसके नाम का विर्द तो अम्मा की सोच की सरहदों की तरह लगातार जारी था. फिर वह रोने लगी. सिसकियों से उनका जिस्म लरज़ने लगा. अम्मा अपने आपको लोरी सुनाकर थककर धूप में ही सो गयीं. उनके हाथों में घुंघरू थे. किसी मासूम गाय के गले पे छुरी चलते देख जो हाल होता है वही हाल मेरा था. परिंदे उनसे कहते रहे कि धूप तेज हो गयी है अंदर जाओ लेकिन वह तो जैसे कोमा में चली गयी थीं. एक बार फिर उनकी रोटी बकरी ले भागीं.

“अम्मा....” अपने घर की छत पर खड़े होकर मैं चीख रहा था. शायद अम्मा बेहोश हो गयीं थीं. परिंदे उनके आस-पास मंडरा रहे थे. अम्मा ने मुझे गोद में खिल्लया है, मुझे अम्मा की गोद एक ऐसी इबादतगाह नज़र आ रही थी जहां जाकर इंसान अपने सारे दर्द भूल जाता है. मेरा दिल चाह रहा था कि मैं एक बार फिर अम्मा की गोद में सो जाऊं.

“क्या हुआ....अम्मा!” इस बार मैं ज़ोर से चीखा था. पूरे मोहल्ले में अफ़रा-तफ़री मच गयी. मोटरसाइकिलों की चहल-पहल बढ़ गयी थी. भीड़ में फ़िज़ा गिर गयी थी. उसकी कुहनी में चोट लग गयी थी. मैंने उसे गोद में उठा लिया. मुझे लगा जैसे अम्मा छोटीसी फ़िज़ा बनकर मेरे पास हैं. पास ही के काली मंदिर में ज़ोर-ज़ोर से घंटियां बज रही थीं.

“थोड़ी देर कोमा की हालत में अपनी क़ब्र में आराम करूंगी...फिर कोई नया जिस्म लेकर आऊंगी.....” अम्मा कहा करती थीं. एंबुलेंस अम्मा को अस्पताल लेकर जा रही थी. मैंने पोर्च से कार निकाली और फ़िज़ा को उसमें बिठाकर एंबुलेंस का पीछा करने लगा. आसमान ने जैसे सूरज को बादलों का कफ़न ओढ़ा दिया था और हवाओं में खाला के आंसुओं की नमी थी.

✍️ वार्ड नं. ११, सगम, जुन्नारदेव,
जिला, छिंदवाड़ा (म.प्र.) ४८०५५१
फोन - ९२२९९०१०७०

कोल्हू का बैल

महज तीन घंटे की नींद के उपरांत रंजन जाग गया, चिहुंककर! उसके नेत्रों में जलन थी, सांस चल रही थी, बहुत तेज मानो दमे का रोगी हो. हृदय की धड़कन के सटीक आभास हेतु उसमें दांथी हथेली को सीने पर रखा. धड़कन की गाड़ी दौड़ रही थी...अविराम!

सुबह की कच्ची रोशनी! उर्नीदी दुनियां! और हल्की-चहल-पहल! किसी कील-सा चुभता है सब कुछ. जबकि चिंता मुक्त बचपन के यही प्रभात आंखों में फबते थे - खूबसूरत रंगों की तरह!...तब और आज का रंजन!

“कुसुम!”

वह कुनमुनायी किंतु उठी नहीं. सिर्फ करवट बदल ली.... अगर वह जाग रही होती तो तत्काल, ‘क्या हुआ? कोई बुरा सपना देखा! तबियत तो ठीक है?’ वगैरह-वगैरह....और एक ग्लास ठंडा पानी पेश कर देती, बिना मांगे.

कुसुम की भोली सूरत पर हाथ फेरने का मन होता है उसे. सोती हुई कुसुम का चेहरा सचमुच मनोहारी हो उठता है. कोमल और स्निग्ध. किंतु अपने बढ़ते हुए हाथों को उसने रोक लिया. ...वैसे भी वह उसे बेहद तंग करता रहा है.

धरती पर पांव रखने की भी इच्छा नहीं होती उसकी. थकान के मारे अंग-अंग टूट रहा है. ...टूटेगा नहीं! सारे दिन की कड़ी मेहनत तिस पर आधी रात का सश्रम जागरण! लगभग एक बजे तक वह झुका रहा था, उन बही-खातों पर, जिनकी अंतिम गणना शटर गिरने के पूर्व तक चाहकर भी वह नहीं कर पाया था. और अब सुबह की यह क्लास!

एम.कॉम. होल्डर रंजन उपाध्याय विद म्यूजिक नॉलेज! ... महानगर की सरसराती ज़िंदगी में भी उसने अपनी कला को संजोकर रखा है. संगीत ही है जो उसे जीवंत कर देता है यदा-कदा. वरना खोपड़ी में भरे हुए ज्ञान के बुलबुले तो सिवाय पेट भरने के और किसी काम नहीं आते. कॉमर्स की मोटी-मोटी किताबें आज उसकी जीविका में तब्दील होकर रह गयी हैं.

अगर आज वह न जाये तो!....कोचिंग के सारे स्टूडेंट्स

उसकी प्रतीक्षा करते रहेंगे. तब क्या वह चैन की नींद सो पायेगा? यह बांसुरी बजाकर स्वीटी का दिल बहला पायेगा? कदापि नहीं!

स्वीटी, उसकी अपनी इकलौती बेटी है - दो साल की गोरी-चिट्ठी स्वीटी, सफेद ऊन के गोले-सी गुलगुली, बिल्कुल अपनी मां पर गयी है.

बेटी के स्मरण ने उसे विह्वल कर दिया. उसने बिस्तर छोड़ा, पांव ज़मीन पर रखे और दरवाज़ा खोलकर कब पालने तक की दूरी तय की, उसे नहीं पता.यह क्या था. प्रेम की विवशता या बेटी की फ़िक्र!

न! सारी रात कुसुम उसके कमरे में सोती थी. सिर्फ़ भोर की दस्तक के साथ वह रंजन के पास चली आती. क्योंकि यही वह

॥ रजनीश राय ॥

वक़्त था जब वह रंजन के सानिध्य में रह सकती है....खोयी सोयी और निश्चिंत.

तब स्वीटी भी उसे बख़्श देती. गहरी नींद के आगोश में वह कुनमुनाती भी नहीं थी.

उसने स्वीटी को छूने की हिमाकत नहीं की. वरना अभी ऊं-ऊं-आं-आं का स्वर पूरी बिल्डिंग में गूँज उठेगा. आस-पड़ोस का हर व्यक्ति जान लेगा कि रंजन की सुबह हो गयी.अब आरंभ होगा भागदौड़ से परिपूर्ण दिन, जो आधी रात के पहले तक नहीं ढलेगा.

...पापा जाओ, जल्दी जा..ओ, वरना मेरे खिलौने, बिस्किट्स और कपड़े कैसे आयेंगे!

उसने ग़ौर से देखा, अपनी बेटी के निश्छल चेहरे को. नहीं वह तो गहरी निद्रा में लीन है. तो फिर. ...अपनी ही आवाज़ को इतनी स्पष्टता से सुनना कितना भयावह होता है, कभी-कभी!

जून के आखिरी दिनों में भी उसके शरीर पर कांटे उभर आये. जैसे अक्सर कड़कड़ाती ठंड के दिनों में उभर आया करते हैं. सर्दी के रोंगटे ठंड से खड़े होते हैं जबकि गर्मी के बाहरी दहशत से.

वह थोड़ी देर तक स्वीटी की कोमलता को निहारता रहा,

फिर हट गया. चुंबन को मुलतवी करना पड़ा. जब वह फुर्सत में हो और स्वीटी जागती रहे, तब तक के लिए. ...जाने कब आयेगा अब वह दुर्लभ क्षण!

पल भर में निर्णय लेना होगा उसे. ...कुसुम को जगाये? उससे चाय का पानी रखने के लिए कहे? कपड़े, जूते, टाई और पेन देने के लिए बोले? तब वह टिफिन का आग्रह करेगी. 'कुछ बना देती हूँ चटपट. लेते जाओ साथ में. लंच में खा लेना'. उसकी अनुनय-विनय की मूर्त परिणति का तात्पर्य है एक घंटा. ज्यादा ही, हो सकता है इससे कम नहीं. जबकि लगभग बीस मिनट अभी लिफ्ट को सौंपने होंगे. तब कहीं जाकर वह अपार्टमेंट के उस तहखाने में पहुंचेगा जहां उसकी नयी-नवेली बाइक उसका इंतज़ार कर रही होगी - बेसब्री से.

खुद से खुद को तैयार कर लिया उसने, महज़ पंद्रह मिनटों में. एक कप चाय सुड़की और कमरे के बाहर, बिल्कुल दबे पांव, चोरो की तरह....न नाइट बल्ब्स ऑफ किये, न पैसों की पड़ताल ही की. सिर्फ धीरे से दरवाज़े का लॉक खोला और एक पर्ची लिखकर छोड़ दी...लंच ले लूंगा, बाँय!

कच्चे दूध-सी उजली सुबह, बर्फ-सा शीतल पवन! रंजन ने खींचकर सांस ली, एकसीलेटर मरोड़ा और काली सड़क पर चिपटी सफ़ेद पट्टियों को छोड़ने लगा पीछे, एक के बाद एक. रफ़्तार ज़रूरी है इस वक़्त वरना क्लास के स्टूडेंट्स ही उसका नामकरण करने में पीछे नहीं रहेंगे....घरघुस्सू, कामचोर, जोरू का गुलाम!

कोचिंग, उसके दिन का पहला हिस्सा है. इतनी 'कॉमर्स' तो उसने पढ़ ही रखी है कि वह दूसरों के लिए एक कुशल मार्गदर्शक बन सकता है. सो महानगर के बढ़ते खर्च के दबाव के चलते उसने कोचिंग ज्वाइन कर ही ली आखिर. वैसे भी सुबह का सारा वक़्त नहाने-खाने में कट जाता है. यह कभी पहले वह सोचा करता था. किंतु अब अगर मजबूरी न होती तो कोचिंग को कब का अलविदा कहकर घर बैठ चुका होता...वह सुबह ही क्या जिसमें अपनी मर्जी से उठने की इज़ाज़त न हो, चाय की चुस्कियों के साथ अख़बार-दर्शन की मोहलत न हो!

दोपहरें! चाहे जिस मौसम की हों वह कभी भी नहीं देख पाता.... गर्मी की चिलचिलाती धूप में झुलसती दोपहरें हों, सर्दी के कुम्हलाये आलोक में ठिठुरती दोपहरें हों या फिर बारिश की रिमझिम फुहारों में भीगती दोपहरें हों- वह उन्हें नज़र भर कभी भी नहीं देख पाता. जबकि चाहता है कि उन पेड़ों, मकानों, सड़कों के ऊपर फैले हुए विस्तृत वितान को निहारता रहे. अपलक - जिसके तले की ठोस धरती पर भागती हुई ज़िंदगियों के बीच गंसे



Dr. Anil Kumar

प्रकाशन : विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में गज़लें और कहानियां प्रकाशित.

संप्रति : आदित्य कोचिंग संस्थान के डाइरेक्टर पद पर कार्यरत एवं अंग्रेजी के शिक्षक.

हुए एक छटपटाते मन में इस अभिलाषा को लिये वह पूरी शिद्दत से प्रतीक्षारत रहता है. हर वक़्त !

रंजन ने अपनी दोपहरें गिरवी रख दी थीं. उस फर्म मैनेजर के पास, जो अपनी फ़ाइलों पर सुबह से शाम तक झुका रहता था. महीने के चार इतवारों में से तीन पर बुलाने के लिए परिस्थितियां सृजित करता रहता था वह. ट्रेड एंड कॉमर्शियल फ़िल्ड की उस दिपदिपाती फर्म से खुद को काटकर देखना नामुमकिन हो गया था रंजन के लिए...इंटरनेशनल फर्म के अपने चोंचले और ज़िम्मेदारियां होती हैं. निभानी तो पड़ेगी ही अगर नाम और पैसा चाहिए तो!

पहले! बहुत पहले! जब वह किशोर था, अपनी शामें तरह-तरह से व्यतीत करना चाहता था. ...बारिश की भीगी शामों को कुरकुरी पकौड़ियों और गरमागरम चाय के साथ, गर्मी की सूखी शामों को पहाड़ों की ख़ामोशी या नदियों के सूनेपन से बांसुरी के साथ और सर्दी की ठिठुरती शामों को रजाई में दुबककर किसी अच्छी किताब के साथ बांटना चाहता. किंतु अब, जब वह अकेला नहीं रह गया है अपनी शामों को सिर्फ अपने परिवार के साथ सेलिब्रेट करना चाहता है. ...क्या ऐसा हो सकता है? महानगर के दामन पर शायद ऐसी शामों की तस्वीरें नहीं देखी जा सकतीं.

जैसे कोचिंग की चंद क्लासेज को अलविदा कह, वह फर्म पहुंचने के लिए बेताब हो उठता है वैसे ही फर्म को बाँय कहकर वह उन दुकानों की ओर भागने लगता है जिनके मोटे बही-खातों के एकाउंट्स चेक करने के लिए वह सादर आमंत्रित है....भागते हुए ट्रैफिक की बीमार चेतना से गुज़रते हुए उसे कुछ भी याद नहीं रहता - न चाय, न पकौड़ियां, न किताबें, न ख़ामोशी, न सूनापन

और न ही अपना नन्हा-सा कुटुंब! उसे परवाह रहती है तो बस उन आंखों की, जिस पर सितारे-सा टंका रहता है एक प्रश्न : काम करना है या नहीं करना!

बही-खातों के हरे पृष्ठों पर अंकों की लंबी फेहरिश्त होती. देर तक वह उनसे उलझता रहता. लेकिन जब समय पूरा होने के पहले तक काम पूरा न हो पाता तो वह उन्हें लेकर घर की ओर चल देता. कुसुम कांप जाती, उन मोटे बही-खातों को देखकर... अब अगले डिनर तक इंतज़ार करना होगा रंजन से मिलने के लिए.

तब दिन भर की थकी-मांदी कुसुम सो जाती. उसे पता रहता, टकटकी लगाये कुसुम उसे देख रही है. अनवरत किंतु अभी नज़र हटी कि पूरा हिसाब फिर से करना होगा, शुरू से. इस भय से वह एक पल भी नहीं दे पाता, अपनी उस पत्नी को, जो उसके साथ अपना पूरा जीवन गुज़ारने के लिए इस महानगर में चली आयी थी....तब नींद के हिचकोलों पर सवार कुसुम उससे दूर निकल जाती बेहद दूर और वह उसे घसीटकर इस दुनिया में वापस ले आने की हिमाकत न कर पाता, क्योंकि उसे डर था ऐसा करने पर वह अगली सुबह वक़्त पर उठ भी पायेगा या नहीं!

तब स्वीटी आयी और उसने अपना कार्यस्थल बदल दिया. नहीं, बल्कि कुसुम ही स्वीटी के साथ सोने लग गयी. दूसरे कमरे में.भोर के सिवा कुसुम के लिए तब कौन सा समय बचता था ?

कल की रात उसने देर तक गणनाएं की थीं. आज की रात मोटे-मोटे रजिस्टर ले आयेगा, तब उस पर उन्हें 'काँपी' करके उसे दूकानदार को सौंप देगा - 'लीजिए, आपका फाइनल हिसाब!'

बारिश हुई थी, यह उसे शाम को पता चला. दोपहर को लंच के लिए निकलता तो भी टिपटिपाती बूंदों को देख सकता था, जिन्होंने धोकर रख दिया था सारी कुदरत को. पेड़ों पर एक अजीब सी जगमगाती हरियाली व्याप रही थी. ऊंचे टॉवरों पर चढ़कर अगर वह देखता तो सारा शहर चमचमाती स्वच्छता में डूबा जान पड़ता.

उसका मन हुआ, बांसुरी बजाये कहीं दूर किसी खोखल में बैठकर जो रंग-बिरंगे फूलों से घिरा हो, जहां शहर के कंटीले प्रदूषण का भभका न हो, जहां दानवी कोलाहल का दंश न हो.

....एक प्रश्न, उसे मुंह चिढ़ाता है. जो सितारे-सा टंका रहता है. आंखों में हंसता है उस पर!

□

रात के दस बज गये!

घर पहुंचकर रंजन ने कमल को आया देखा. वह उसका साला है. इकलौता छोटा साला! किंतु कुसुम से उसकी उम्र कुछ

ज़्यादा कम नहीं है मात्र दो वर्ष !

कम्पटीशन की परीक्षाएं देते-देते वह बूढ़ा हो चला है. बाल झड़ चले हैं. दूज के चांद-सी गंजी खोपड़ी पर रंगे हुए बालों का विरल गुच्छा है. आंखों के नीचे की कालिमा गहरी हो चली है और नासापुटों को स्पर्श करती हुई दो लकीरें मुंह के दोनों ओर पहुंचकर लुप्त हो गयी हैं, मानों कोई उभरा हुआ पथ अचानक धरती में धंस गया हो. ...वह वास्तविक बूढ़ा नहीं. उसका बुढ़ापा झूठा है. वरना मनमोहिनी कुसुम का छोटा भाई इतना बूढ़ा! दरअसल मन का बुढ़ापा धीरे-धीरे तन पर आच्छादित हो चला है. उसकी नसों में बहने वाले ठंडे लहू, मस्तिष्क में उठने वाले नकारात्मक विचार, हृदय में बसने वाली लाइलाज़ कुंठा और आंखों में तैरती रहने वाली मुर्दा कामनाओं ने उसे बुजुर्गियत का बाना पहना दिया है.

“कब आये?”

रंजन ने भरसक मुस्कराने की चेष्टा की. थकान ने उसे शिथिल कर दिया था.

“घंटा भर हुआ...लगभग!”

कमल ने टी वी ऑफ कर दिया. किसी खबरिया चैनल पर न्यूज़ देख रहा था वह. ...लगभग हर घंटे बाद वह रेडियो, अखबार या टी वी से चिपक जाता, समाचारों की टोह में.

“कुछ ख़ास था क्या?”

रंजन का इशारा उस दुनियां की तरफ था, जिसका वह हिस्सा तो था, किंतु केवल औपचारिक ढंग से दूर-दूर, सिर्फ उसे छूता हुआ.

“वही हत्या, डकैती, मारपीट, बलात्कार!”

“भोजन किया?”

“आपका वेट कर रहा था.”

“चलो, फिर देर कैसी!”

खाना खाने के बाद कमल ने ज़िद पकड़ ली, “जीजाजी, चलिए न छत पर. देखिए कितनी बेहतरीन हवा चल रही है.”

हवा के कुछ पुख्ता प्रमाण कमरे में प्रवेश कर रहे थे चिंदियों की शक्ल में....उसकी टाई झूल रही थी - घड़ी के पेंडुलम की तरह, गुलदस्ते में गंसे नकली फूलों का एक गुच्छा हिल रहा था और कुसुम की घुंघराली लटें लहरा रही थीं.

दिन भर की थकी मांदी कुसुम को बर्तन मांजने होते हैं, बेसिन के सामने खड़े होकर. तब वह देख पाती है, महानगर का वह हिस्सा जो खुली खिड़की के सामने बिखरा होता है मकानों, दरख्तों, टॉवरों और जगमगाती बत्तियों की शक्ल में. दूर, कतारबद्ध अपार्टमेंट के पिछवाड़े से उठती रोशनी के भभके की थिंगलियां नज़र आतीं, जिनके बीच से कभी कोई एरोप्लेन गुज़र जाता -

आलोक की माया को चीरता हुआ.....अपार्टमेंट की दसवीं मंज़िल पर रहने के ये क्या कम फ़ायदे हैं.

रंजन को काम करना था. वह बहाने बना रहा था. उसकी व्यस्त ज़िंदगी में समय के दुरुपयोग की कोई गुंजाइश नहीं थी...वार्तालाप यदि बेज़रूरत हो तो उसके लिए यह वक़्त की बर्बादी ही थी.

खुद कुसुम से उसे शॉर्ट कोटेशंस में काम चलाना पड़ता... जाना है. ज़रूरी है! ठीक है! कर लूंगा! अच्छा! फिर कभी!... वगैरह - वगैरह.

अब वे पचीसवीं मंज़िल की छत पर बैठे हुए थे - एक दीवार पर!

“देखा आपने यहां का सुख! बहाने बना रहे थे!”

रंजन को लगा, किसी फिल्मी पर्दे पर वह परियों का देश देख रहा है..... सफ़ेद बादलों की आकृतियां भाग रही हैं. चांद की दमकती आभा कभी उनके आगोश में छिप जाती है. कभी नंगी, बेलौस होकर बरसने लगती है पूरी पृथ्वी पर, जहां का संपूर्ण वातावरण झूम रहा है वायु के मंद-मंद झोंकों से.

प्राकृतिक सौंदर्य की ऐसी निराली छटा देखकर वह अभीभूत हो उठा. उसे लगा, वह मशीन नहीं है. जीता-जागता, सांस लेता हुआ एक मांसल शरीर है, जिसके अंदर एक धड़कता हुआ हृदय है जिसकी प्रत्येक सतरों पर मीठे ख़्वाबों की तस्वीर चिपकी हुई है. ...अगर उसकी चासनी को चखने की फुर्सत उसे नहीं मिलती तो कोई क्या करे!

कमल रंजन को देख रहा था टकटकी बांधे! जैसे उजले बादलों की परछाई उसकी शक़ल पर आ गिरी हो और उसको देखते रहना ही उसका दर्शन करना हो.

सारा शहर जगमगा रहा था. सड़कों पर रोशनी की चिंगारियां दौड़ रही थीं. दिन का फुर्तीला जीवन अब अपनी मांद में पड़ा था अलसाया और उर्नीदा-सा.

अपार्टमेंट की सूनी छत, सबसे उच्चतम शिखर प्रतीत होती थी, जिसके परे सब कुछ देखा जा सकता था. विरल वृक्ष, संयुक्त सड़कें, उड़ते फ्लाई ओवर और छितराये हुए प्रदीप्त टॉवर्स, जो मकानों के बीच यहां वहां, सींगों से उग आये थे.

“ज़िंदगी में कुछ नहीं रखा है जीजा जी. व्यर्थ की भाग-दौड़ से कोई फ़ायदा नहीं. एक दिन तो हम सबको मरना ही है. मरने से यहां कोई बच नहीं सकता, चाहे आप जीने के लिए कितनी भी जदोज़हद क्यों न करें. इसीलिए कह रहा हूं थोड़ी चैन की सांस भी लिया करिए. क्यों करते हैं इतनी भाग-दौड़? मत करिए, मत करिए! मैंने सब कुछ करके देख लिया है. कोई फ़ायदा नहीं. फॉर्म

भरते-भरते बूढ़ा हो चला हूं. अब तो एग्जॉम के नाम से भी डर लगता है मुझे. जी चाहता कहीं डूब मरूं या सारी दुनियां को ही आग लगा दूं. सच मानिए, यही कुछ प्राकृतिक सौंदर्य ही मेरे जीने का सहारा रह गये हैं वरना...”

रंजन ने कमल को पकड़ लिया. उसे लगा, वह अभी उठेगा औचक...और अपार्टमेंट की पचीसवीं मंज़िल से छलांग लगा देगा, नीचे की ओर.

कमल के चेहरे पर कोमलता नहीं थी. उसकी लाल टेसू-सी शक़ल पर दो अतृप्त सितारे टंके थे, चांदनी की स्निग्ध आभा में झिलमिलाते हुए.

सब कहते हैं कमल की स्पीच उसकी विद्वता की देन है. ज्ञान की अतिशयता ही उसे चुप नहीं रहने देती. जबकि रंजन को उसके दिमाग का कोई स्क्रू ढीला लगता है इसके लिए....किंतु उसे पागल की श्रेणी में थोड़े ही रखा जा सकता है.

“एक दिन मरना है तो क्या हम जीना छोड़ दें, बोलो? जीना तो पड़ेगा ही कमल, चाहे हंस के चाहे रो के.”

“मैं नहीं मानता, अगर जीना है तो हंस कर जियो वरना मर जाओ.”

“इस खूबसूरत दृश्य को देखकर भी तुम्हें मरने की सूझ रही है! कैसे आये कोई एग्जॉम है कल?”

“एग्जॉम से हमेशा के लिए किनारा कर लिया है मैंने. अब तो आपकी तरह कोल्हू का बैल बनना है और इसी शहर में एक दिन आखिरी सांस लेनी है, बस!”

कोल्हू का बैल! ...रंजन को ठेस तो लगी पर वह हंस दिया - फीकी हंसी जिसमें उसकी थकान और खिन्नता घुली हुई थी.

“मैं कोल्हू का बैल हूं?”

“और नहीं तो क्या, जो सुबह से शाम तक बंधी-बंधायी ज़िंदगी में पिसता रहे वही तो होता है कोल्हू का बैल. न दम मारने की फुर्सत, न आज्ञादी के दो पल हुंह, ये भी कोई ज़िंदगी है.”

“तो यह भी सुन लो कमल. अगर आज की दुनियां में अपने परिवार को बेहतर ज़िंदगी देनी है तो कोल्हू का बैल बनना ही होगा, समझे. अगर आज मैं तुम्हारी दीदी को लेकर इस शानदार और मंहगे मेट्रोपोलिटन शहर में रह रहा हूं तो अपनी प्रतिभा और मेहनत के बल पर. यहां के खर्चे जानते हो तुम! सुई से लेकर दवा तक ज़रूरत की हर चीज़ खरीदनी पड़ती है हमें. कुल बीस हजार भी कम पड़ जाता है महीने में. यहां की हवा भी बिकती है, पानी भी बिकता है. अगर कोई कोल्हू का बैल नहीं बनेगा तो गंदी नाली का कीड़ा बनकर रह जायेगा, अंडरस्टैंड!”

चांद बदलों की ओट में छिप गया. शायद उसे भी सौंदर्य की उपेक्षा भली नहीं लगी....जब वारिद की बेडौल आकृतियां कवि हृदयों को झिझोड़ कर उनमें विभिन्न रसों का संचार कर रही थीं, जब चित्रकार के दिल तूलिका उठाने को बेताब हो उठे थे, जब कथाकारों की कल्पना का रत्नजटित सिंहासन जगमगाने लगा था, तब दो अभागे, उलझे हुए व्यक्तियों को देखकर किसका जिगर पीड़ा और रोष से नहीं भर उठेगा.

कमल के मानों किसी ने तमाचे जड़ दिये हों तड़ातड़. यानि कोल्हू के बैल से भी बदतर जिंदगी जी रहा है वह! बजबजाती हुई नाली के एक कीड़े की तरह!!....बिना धन-दौलत का आदमी और कैसा होता है, बोलिए?

“मैं तो शायद ऐसे न जी पाऊं जी...जा.... जी...!”

अपनी झेंप से निपटने की इससे बेहतर युक्ति उसे नहीं सूझी. अब उसके वास्ते न चांद था, न बादल थे, न पवन के सुखदायी झोंके जो गर्माहट और शीतलता के मध्यबिंदु पर ठहर से गये थे. अब था केवल दंश जिसमें उसका पूरा अस्तित्व लिथड़ा हुआ था. जाने कितने ही वर्षों से और जिसे माथे पर छलछलाये पसीने की तरह तपाक से नहीं पोंछा जा सकता था.

कमल उठा चार कदम चलकर रुक गया.

“तो यह भी समझ लो बरखुर्दार, आजकल के कॉम्पटीटिव वर्ल्ड में फिर मरने से बेहतर कोई दूसरा विकल्प भी नहीं है. क्या तुम कूदने जा रहे हो?”

सहसा एक छाया दिखी मीठी चाल से आगे की ओर बढ़ती हुई. ...कुसुम थी. काम से फुर्सत पाकर उसे लगा, आज की रात बिल्कुल अनूठी रात है, जो वर्षों बाद शायद धरती के इस टुकड़े पर पहली बार आयी है. आज रंजन ऊपर गये हुए हैं चाहे जिस भी वजहों से यह मायने नहीं रखता, मायने रखता है उनका फ्लैट में उस वक्रत अनुपस्थित रहना, जब वे किसी अटल योगी से विराजमान रहते थे, अपने लंबे अंकपत्रों के साथ.

कुसुम के मन में एक स्वाभाविक - सी करुणा चली आयी घिसटती हुई. ऐसी रातों के लिए वह तरस गये हैं, तब वे अपने दिन भर का लेखा-जोखा उसे सुना सके, रस ले ले कर. ऐसी सुबहों से उन्होंने समझौता कर लिया है जिसमें वे दूर तक जा सकते थे, अपनी अर्धांगिनी के साथ-चहलकदमी करते हुए.ऐसे दिन क्या किराये पर लिये जा सकते हैं कहीं से!

उसने स्वीटी को उठाया, बांसुरी ली और कूच कर दिया छत की ओर...भला हो कमल का जो उन्हें घसीट ले गया छत की

गज़ल

केशव शरण

जगमगाती जिंदगी थी चार दिन,
क्या मजे की चांदनी थी चार दिन.

एक दिन सारी हक्रीकत खुल गयी,
ख्वाब की जल्वागरी थी चार दिन.

उम्र भर उनकी अदावत झेलिए,
जिनसे गहरी दोस्ती थी चार दिन.

एक दिन उसने छुआ था प्यार से,
और मुझको गुदगुदी थी चार दिन.

एक लम्हा आ गया जो तैश में,
हर तरफ़ इक खलबली थी चार दिन.

नफ़रतों के भी निशां सब मिट गये,
प्यार की नगरी जली थी चार दिन.

कितनी नदियां और सागर बन गये,
आंसुओं की वो झड़ी थी चार दिन.

फिर चमन पहले के जैसा हो गया,
लहलहाहट मौसमी थी चार दिन.

उम्र दुनियादारियों में कट रही,
किसलिए दीवानगी थी चार दिन.

एस २/५६४,

सिकरौल, वाराणसी - २२१००२

ओर. अब चाहे जो भी हो, आज वह बांसुरी सुनकर रहेगी उनसे.

“आपकी बांसुरी बजाने यहां नहीं आया था.”

“मगर आज तो आपको बजानी ही होगा...एट एनी कास्ट!”

बांसुरी बजी सारे बंधनों को तोड़कर. सब झूम उठे. स्वीटी भी जाग गयी. रोने के बजाये वह हंसने लगी. रंजन मगन था सब कुछ भूलकर कि सुबह फिर उठना होगा, कोचिंग, फर्म और दूकानों की खाक छाननी होगी...एक बार फिर!

द्वारा श्री चंद्रबली राय, ५४८/१७के/११के
बेनीगंज, नयी बस्ती, इलाहाबाद-२११०१६

फोन-९९३६६९६९०७

कोना भर धूप

पॉल ने पिन कुशन उठा लिया. सामने से शाह आ रहा था. ग्लास डोर से शाह को सीधे दनदनाता देख, उसने पिन कुशन रैक में छुपा दिया. शाह के ग्लास डोर पुश कर ऑफिस में दाखिल होते-होते वह समाचार विज्ञप्तियों में व्यस्त होने का दिखावा करने लगा.

हालांकि पॉल शाह के काइयांपन से बखूबी परिचित था. यह भी जानता था कि उसके चेहरे के भाव शाह से छुप न सकेंगे. फिर भी वह व्यस्त रहा, अभिनय में.

शाह साधिकार सामने की कुर्सी पर जम गया था. उंगलियां पिन कुशन के स्थान पर गर्थीं, फिर वहीं ठहर गर्थीं. “हैलो !” शाह ने धृष्टता से ओंठ फैलाये, “फैक्स करना था.”

दैनिक समाचार पत्र का कार्यालय. क्रस्बे में यहीं एक मात्र फैक्स था. अखबार का. शाम को महत्वपूर्ण खबरों को संपादकीय कार्यालय फैक्स करने के लिए सभी समाचार पत्रों के प्रतिनिधि यहां एकत्र होते. खूब बहसें होतीं. एक दूसरे के कतर ब्योत की रणनीति बनती. फैक्स के चलते पॉल का भी रुतवा था. आमदनी का नया जरिया भी बन गया था. अखबार को हवा भी नहीं थी कि पॉल ने संस्थान की संपत्ति का व्यवसायीकरण कर दिया है.

शाह लगभग रोज ही आता. फैक्स करना होता तब भी, कोई समाचार फैक्स लायक न होता तब भी. आते ही पिनो से खेलने लगता. जाते-जाते दसियों आलपिन डस्टबिन में पहुंचा देता. फैक्स रसीद को समाचार पांडुलिपि के साथ नत्थी करने में कई पिनो जाया करता, सो अलग. पॉल शाह की इस हरकत से खीज जाता. एक बार कड़ाई से कहा भी. शाह ने परवाह न की. मजबूरन पॉल को खुद चौकन्ना रहना पड़ता. इधर शाह ऑफिस में दाखिल होता, उधर वह पिन कुशन रैक में छुपा देता.

शुरुआती दिनों में शाह ने आलपिनो के लिए पूछा भी, पर वह गोल कर गया. फैक्स रसीद संलग्न करने के लिए भी पॉल ने पाबंदी लगा दी.

एक दिन शाह ने बताया था कि इन दिनों आर्थिक तंगी आ पड़ी है. संपादक ने पिछले महीने का फैक्स भुगतान रोक दिया.

कुछ समाचार पांडुलिपियां और फैक्स बिल इधर-उधर हो गये थे. इसके बाद भी शाह लापरवाह बना रहा. आलपिनो तो वह कभी भी नहीं लाया.

शाह की कई अपीलों के बाद पॉल ने नोटिस लिया. तब तक अन्य ‘पत्रकार मित्र’ भी आ बैठे थे. “आज कोई विशेष समाचार है क्या?” पॉल ने शाह की समाचार पांडुलिपियां फैक्स ऑपरेटर की ओर बढ़ा दीं.

“तुम्हें नहीं मालूम?” बालभट्ट बोला. “पुलिस कस्टडी में आज एक युवक मर गया. थाना को सबक सिखाना है. बिल्कुल ‘भाव’ देना बंद कर दिया.” पॉल चुप रहा. वह पत्रकारिता के

॥ अखिलेश कुमार ॥

क्षेत्र में पक्का खबरची माना जाता था. यह खबर कैसे छूट गयी.....? वह सोच में पड़ गया.

फैक्स ऑपरेटर ने बिल और समाचार पांडुलिपियां शाह को वापस कर दीं. “यार ! पिनो नहीं हैं.” शाह ने पहलू बदला.

“नहीं, खत्म हो गर्थीं.” पॉल साफ़ झूठ बोल गया. तत्क्षण अनायास मुस्कुरा उठा. उसकी इस मुस्कुराहट का मतलब सभी समझते थे. सिवाय शाह के. पॉल ने कई बार शाह की पिनो को लेकर साथी पत्रकारों से फ़जीहत की थी.

पॉल के अतिरिक्त पांच दैनिक समाचार पत्रों के प्रतिनिधि अस्तित्व में थे. पॉल सबसे पुराना था. उस पर तामझाम इतना ग्लैज्ड था कि कोई भी प्रभावित हुए बिना बच नहीं सकता था. लोगों की इसी नज़र का वह फ़ायदा भी उठा रहा था.

अखबार से तो कुछ खास न मिलता था. दंद-फंद में कमाई थी. सीधे-सीधे मोटी दलाली. इसी आकर्षण में पत्रकारिता को हथियाने के षडयंत्र भी चलते रहते. जो पत्रकार अधिकारियों पर रुतवा गालिब कर सैटिंग करा ले, नेताओं की चापलूसी कर काम निकलवा ले, - वही कामयाब. दबंग और तेज़ तर्रार का तमगा भी उसी के मत्थे. खबर को खबर साबित कर पाने से ज़्यादा मशक़त किसी पत्रकार को हटाने और उस पर खुद कब्ज़ा करने या किसी ‘अपने’ को काबिज कराने की होती. इस पर लंबे-लंबे घातक

विवाद तक हो जाते. कोर्ट-कचहरी भी.

पुलिस कस्टडी में मौत की खबर ने पॉल को अनमना कर दिया था. खबर छूटने की खीज चेहरे पर जड़ गयी. उसे किसी भी बात में मज्जा नहीं आ रहा था. केवल बीच-बीच में नकली हंसी हंस पड़ता....जब सब हंसते. मामला दिलचस्प था. एक महिला नेता का चरित्र तार-तार किया जा रहा था. मुंहबाजी देर तक चली. एक-दो लोग और नंगे किये गये. फिर सब चलते बने.

पॉल को चैन न था. सोचते सोचते उसकी खुराफात जागी. थाना फोन मिला दिया. संयोग से लाइन पर दरोगा कादरी था. वही, जिस पर युवक के परिजनों ने पीट-पीट कर मार डालने का आरोप लगाया था. कादरी पॉल से कम धूर्त नहीं था. आवाज़ पहचानते ही चिरौरी करने लगा. पॉल ने उसकी मक्खनबाजी में रुचि दिखाने की ज़रूरत महसूस नहीं की. वह जागरूक उपभोक्ता था. मौक़े पर 'यूज' होना और किसी को 'यूज' करना पॉल को खूब आता था. वह जल्द ही जात पर उतर आया.

मामला पांच हज़ार रुपये में तय हुआ. पॉल खबर नहीं छापेगा. कादरी ने राहत की सांस ली. पास ही थाना था. हेड कान्सटेबिल पांच-पांच सौ के दस नोट और बीयर की एक बोतल थमा गया.

सुबह मामला तूल पकड़ गया. मारा गया युवक दलित था. छुटभैय्या नेताओं ने मुद्दा उछाल दिया. भीड़ ने थाना घेर लिया. प्रशासन के हाथ-पांव फूल गये. कहीं नौकरी पर ही गाज न गिर जाय. सरकार दलितों की पैरोकार. अधिकारी ले-दे कर मामला सुलटाने की कोशिशें करने लगे. दलित नेता थे कि मान ही नहीं रहे. पुलिस क्षेत्राधिकारी से ले कर जिलाधिकारी तक विनती कर चुके थे. मामला फंसता ही जा रहा था. सभी अखबारों के प्रतिनिधि मौक़े पर. केवल पॉल ऑफिस में था. वह घटना की जानकारी मुख्यमंत्री को देने के लिए फ़ैक्स करने आये नेताओं से उलझा था. उलझा क्या, वह अखबार में 'कायदे' से खबर छापने के लिए उन्हें रुपयों की राह लगा रहा था. नेता तो नेता. कल अखबार में फोटो न छपी तो पब्लिसिटी कहाँ? और पब्लिसिटी न मिली तो राजनीति क्या खाक होगी? राजनीति की दुकान ठंडी की ठंडी रही तो फिर इतनी हंगामेदार कवायद का फ़ायदा भी क्या? बात पट गयी. पॉल ने बाजी पाले में कर एक और दांव फेंका. दांव लग गया. उसने अन्य प्रतिनिधियों के लिए भी रुपये ऍठ लिये. जेब गर्म कर रुतवे से पहुंचा. शव के पास विरोध प्रदर्शन पर बैठे नेताओं में फोटो खिंचने की होड़ मच गयी. पॉल ने धड़ाधड़ कई फोटो उतार लिये. अन्य प्रतिनिधियों के भी वास्ते.



अशिलेश कुमार

१ जनवरी १९७८, लक्ष्मन नगला (फर्रुखाबाद) उ.प्र.,
एम.एस.सी. (वनस्पति विज्ञान) छत्रपति शाहू जी महाराज
विश्वविद्यालय कानपुर.

प्रकाशन : कृतित्व : पांचवे माले की नायिका (कहानी संग्रह), कलियुग की यशोधरा, गुलमोहर फिर खिलेगा, जीवन संध्या के उस पार (संकलन में)

सम्मान : मायादेवी स्मृति युवा कथाकार पुरस्कार (१९९७), राममूर्ति स्मारक युवा कथाकार पुरस्कार (१९९९), भगवत प्रसाद स्मृति साहित्य पुरस्कार (२००२), आर्य स्मृति साहित्य सम्मान (२००२), राधेश्याम चितलांगिया कहानी पुरस्कार (२००३).

अन्य : १९९३ से साहित्य सृजन की शुरुआत. तभी से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचना प्रकाशन. इसी वर्ष पहली कहानी 'बेककन' छपी. मूल विधा कहानी. कविता, व्यंग्य व निबंध विधाओं में भी लेखन.

शाम को शाह मौज में सुना रहा था. पॉल ने समोसों का इंतजाम कर रखा था. अपना कमीशन काट कर शेष रुपये सभी में बराबर बांट दिये थे. बैठक में माथुर नदारद था. वही सभी के तीरों का निशाना था. पॉल की एक खास आदत थी. वह बारी-बारी से सभी अखबारचियों को बीट करता. इस समय वह माथुर के खिलाफ शाह को भड़का रहा था. वैसे ही. फ़ितरतन. शाह ने माथुर को भद्दी गाली दी. सभी ठठा पड़े. थोड़ी देर बाद डॉ. बालभट्ट चलता बना. बच्चा बीमार था. दवा देनी थी. उसके जाते ही माथुर आ बैठा. अब डॉ. बालभट्ट पर तलवारों भंजन लगीं. मुफ्त का मज्जा. पॉल बीच-बीच में उत्प्रेरक का काम करता. आगे का काम बाकी करते जाते. वह जम कर लुफ़ उठाता. यूँ कभी-कभार की गर्मी उसकी टिप्पणियां लज़ीज होतीं. परिचर्चा

का मुख्य आकर्षण.

इधर एक भीषण दुर्घटना घट गयी. डॉ. बालभट्ट का अखबार छपना बंद हो गया. अखबारनवीसों के आपस में मिलते ही डॉ. बालभट्ट प्रकरण शुरू हो जाता. पॉल के ऑफिस के लिए तो यह खबर विशेषांक थी. पॉल किसी पत्र प्रतिनिधि को छेड़ता. चटखारों का उबाल घुमड़ने लगता. डॉ. भट्ट वास्तव में चक्र में फंस गये थे. उनकी डॉक्टरी अखबार के बूते ही चल रही थी. बिना डिग्री के एम. बी. बी. एस. डॉक्टर. लेकिन हाथ कौन डाले? कहीं अधिकारियों के खिलाफ कुछ उल्टा छाप दिया तो? लेने के देने पड़ जायेंगे. लोकतंत्र के चौथे स्तंभ से कौन वाकिफ़ न होगा? अखबार वालों को सब माफ़.

वह तो अच्छा हुआ कि यह सरकारी माफ़ीनामा कभी अखबारियों की आंख नहीं चढ़ पाया. चढ़ जाता तो डॉ. भट्ट जेल के दर्शन कर रहे होते. पिछले इतिहास में एक-दो पत्रकारों को उनके 'साथी' यह करिश्मा दिखा भी चुके थे. डॉ. बालभट्ट के अगले क्रम पर सबकी नज़र थी. बुरे वक्त में डॉ. भट्ट के सबसे ज़्यादा काम कोई आया तो पॉल. उसने मुफ़्त में डॉ. भट्ट को नुस्खा दे दिया, "शाह की अखबार में साख़ घट रही है. उसकी जगह के लिए क्यों नहीं आजमाते. उसके खिलाफ पेश करने के लिए सबूत चाहो तो मैं मुहैया करा दूंगा."

पॉल की शह. डॉ. बालभट्ट ने हाथ पैर मारने शुरू कर दिये. अगली शाम उसने शाह को डॉ. भट्ट से सावधान रहने के संकेत भी दे दिये. कहां-कहां एतिहात बरतनी हैं, वह भी समझा दिया. शाह के सामने फ़ैक्स रसीद को समाचार पांडुलिपि में संलग्न करने के लिए पिन कुशन भी रख दिया. शाह ने आलपिन तोड़नी शुरू कर दीं. पॉल खीजा नहीं. दरअसल वह कल शाम की महफ़िल के लिए मसाला पका रहा था.

आखिर शाह मात खा ही गया. डॉ. भट्ट ने तिड़ी पांच कर अखबार की संवादातायगी हथिया ली. मजमा जुड़ा. पॉल आदत के विपरीत बात-बात पर लंबे अट्टाहस भर रहा था. डॉ. भट्ट खुशी में महंगी स्कॉच लाया था. सिगरेट के धुएं और स्कॉच की कॉकटेल बन रही थी. "स्याला शाह...." अखबारियों को चुप्पी लगाते देख पॉल ने शिगूफ़ा छोड़ा. माथुर झोंक में था, उसने शाह को गरियाना शुरू कर दिया. मजमें में करंट दौड़ गया. शाह की छीछालेथन गतिमान हो गयी.

देर तक दौर चला. अंत में पॉल अकेला रह गया. एक एक्सीडेंट था. अभी फोन पर किसी से जानकारी मिली थी. समाचार 'बनाने' में मन नहीं लग रहा था. बेसब्री से शाह का

इंतज़ार था. शाह के साथ मिल कर वह डॉ. भट्ट की निंदा करने को आतुर था. पर शाह था कि कमबख्त आ ही नहीं रहा था. दो-तीन बार फोन भी किया. घंटी बजती रही, रिसीवर नहीं उठा. पॉल बेचैन हो गया, "क्या खिचड़ी पका रहा होगा. हरामज़ादा....." एक्सीडेंट की खबर जैसे-तैसे पूरी की. ऑपरेटर पांच बजे ही चला जाता था. खुद ही फ़ैक्स लगाया. समय ज़्यादा हो रहा था. शाह के आने की संभावना भी खत्म ही थी. निराशा से पॉल ने टिफिन उठाया, और कार्यालय का शटर गिरा दिया.

सुबह पॉल तरोताज़ा था. कल भेजे सारे समाचार छपे थे. ऐसा अक्सर होता नहीं था. अक्सर तो पॉल के समाचार चार-पांच दिन तक अटके रहते थे. कोई-कोई समाचार तो जिला कार्यालय में ही गुम हो जाता. तब पॉल भसभसाकर रह जाता. अखबारिया चुटकी तो लेते ही, समाचार विज्ञप्ति देने वाले रुपये वापस लेने को खड़े हो जाते. पॉल अखबार उलट रहा था. एक नेता समाचार छपवाने के लिए उसकी चापलूसी में तल्लीन था. पॉल उसे नज़रअंदाज कर रहा था. उसका मकसद इस तरह खुद को महत्वपूर्ण साबित करना था. अखबार बंद कर पॉल ने जम्हाई ली. आंखें खोलीं तो वह फैल गयीं. सामने से शाह आ रहा था. पॉल पुलक उठा.

शाह का चेहरा उदासी से भरा था. पॉल की उसे छेड़ने की उत्कंठा हुई. शाह ने अवसर न दिया. पॉल की ओर कागज़ बढ़ा दिया, 'फ़ैक्स कर दो.'

पॉल ने मौक़े की नजाकत समझी. फ़ैक्स लगा दिया. नेता जा चुका था. शाह पूरी तरह रुआंसा था. एकाएक पॉल को ग़लती का अहसास हुआ. टेबल पर आलपिन कुशन रखा था. पॉल ने शाह की ओर देखा. शाह की पिनों की ओर कोई तवज्जो नहीं थी. यह अजीब था. पॉल को घोर आश्चर्य हुआ.

फ़ैक्स होने तक शाह खड़ा रहा. चुपचाप. पॉल ने फ़ैक्स रसीद नत्थी करनी चाही तो उसने मना कर दिया, "अब इसकी कोई ज़रूरत नहीं रह गयी."

पॉल ठगा सा खड़ा रह गया. शाह जा रहा था. शाह ने ग्लास डोर खोल दिया था. धूप का एक हिस्सा झप्प से कार्यालय के एक कोने में उतर आया. शाह ने अभी-अभी क्रमीज के क़फ़ से आंसू पोंछे थे. पॉल मुस्करा गया. कोना भर धूप सिमट कर दोहरी होती चली गयी.



द्वारा श्री रामसुरेश शर्मा, मोहल्ला-इंद्रानगर,
छिबरामऊ, जिला - कन्नौज-२०९७२९
फोन-०९४९५४९३९१७



‘कविता मेरी रगों में रक्त के साथ घुलकर दौड़ती है !’

✍ सुरेन्द्र रघुवंशी

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन को गांठ खोलना चाहते हैं, लेखक और पाठक के बीच की दीवार खत्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, आमने-सामने. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह, परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुत्री सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक ‘अंजुम’, राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रुपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दूबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेन्द्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन ‘उपेंद्र’, भोला पंडित ‘प्रणयी’, महावीर रबाल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद ‘नूर’ और डॉ. तारिक असलम ‘तस्नीम’ से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है सुरेन्द्र रघुवंशी की आत्मरचना.

साहित्य एक ऐसा द्वार है जिससे सारी दुनिया हमारी ओर खुलती है. और यदि हम रचनाकार हैं तो हम अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरी दुनिया के सामने पूर्णतया खुल जाते हैं. आम लोगों के लिए जो बातें नितांत निजी होती हैं, रचनाकार उन्हें भी अपनी संपूर्ण अनुभूतियों के साथ समग्र रूप में संसार के सामने खुला रख देता है. इस तरह वह सबके साथ अपने आपको बांटता है. उसका सुख भी नितांत निजी नहीं होता. वह समग्र सृष्टि के सुख में सुखी होता है और उसका दर्द भी निजी वैयक्तिक न होकर समग्रता में विस्तार पाता है. अपने आसपास की घटनाओं के अलावा यदि किसी दूसरे महाद्वीपीय देश में कोई बड़ी घटना घटित होती है तो रचनाकार के सरोकार उससे भी जुड़ते हैं. रचनाकार की प्रेम प्रवाहिनी अंतर-सलिला निरंतर प्रवाहित होती रहती है. जिसमें वह संपूर्ण रूप से भीग जाता है. सृजन एक ऐसा धर्म है जो हर प्रकार के विनाश के विरोध में जन्म लेता है. ‘सृजन’ विनाश से उपजी शून्यता को भरने का भरसक प्रयास भी करता है. ‘सृजन’ तोड़ने का नहीं जोड़ने का कर्म है. - उस चिड़िया की तरह जो अपने बच्चों के लिए अंडे देने से पूर्व ही तिनके तिनके इकट्ठे करके एक संपूर्ण बुनाबट और विन्यास के द्वारा एक मजबूत घोंसला

तैयार करके ही दम लेती है. यह सब करते हुए उसे हवा के विपरीत रुख, पेड़ की टहनी की चंचलता, आग व बारिश तथा आंधी का भय नहीं होता.

रचनाकार को भी तमाम झंझावतों एवं विपरीत परिस्थितियों में अपने जीवन एवं रचना-संसार का घोंसला बुनना होता है. वह केवल आत्मकेंद्रित होकर ही रचनाधर्म नहीं हो सकता, बल्कि वह हर कोण से सर्वनिष्ठ होता है. एक रचनाकार की सामाजिक श्रेष्ठता का आधार भी संभवतः यही होता है.

मेरा जन्म मध्यमवर्गीय किसान परिवार में हुआ. होश सम्हालते ही मुझे अपने गांव गनियारी (जिला अशोकनगर, मध्यप्रदेश) के शासकीय प्राथमिक विद्यालय में कक्षा १ में दाखिला दिला दिया गया. कक्षा ५ तक की शिक्षा इसी विद्यालय में पूरी हुई. शाला भवन कच्चा और खपरैल था. वह अध्ययन काल लगभग गुरुकुल की परंपरा की याद दिलाने वाला है. हम सब छात्र ही गुरुजी के आदेश पर उसके कच्चे फर्श को सप्ताह में एक बार गोबर से लीपते थे. दोनों गुरु (शिक्षक) बाहर के निवासी थे. एक अलीगढ़ और दूसरे म्याना के. अतः दोनों ही गांव में रहते थे. बच्चे उन्हें अपने-अपने घर के श्रद्धानुसार जरूरत की सामग्री दिया करते थे. गुरुजन निःशुल्क घर पर ट्यूशन पढ़ाते थे.

कक्षा पांच के बाद अध्ययन हेतु नज़दीक के क़स्बे अशोकनगर में आकर रहने लगा. वहां ताऊ जी के लड़के (मेरे बड़े भाई) के साथ किराये के कमरे में रहकर पढ़ने लगा. गांव से क़स्बे में आने के कारण यहां परिवार से विलग हो गया और चौबीसों घंटे एकांत काटने दौड़ता. गांव, मां एवं पिताजी की बहुत याद आती. इच्छा होती कि पढ़ाई छोड़ छाड़कर गांव भाग जाऊं. कमरा, स्कूल और ट्यूशन, बस ज़िंदगी इसी उबाऊ ढर्रे पर चलने लगी. यह बचपन पर प्रहार जैसा था. मोहल्ले में सबसे अपरिचय से जी घबराता और कमरा जेल की कोठरी सा प्रतीत होता. बहुत दिनों बाद सब कुछ सामान्य हुआ.

जब गांव जाते तो सारे हमउम्र साथी इकट्ठे होकर खलिहान के मैदान में खेलते रहते और मैं एकांत में बैठकर कुछ न कुछ सोचता रहता. जबकि सारे दोस्त और अन्य ग्रामीण लड़के खो-खो, कबड्डी और चोर सिपाही आदि खेल खेला करते. मैं इस दरम्यान विचारों की किसी गहरी नदी में कूदकर उसमें गोता लगाता रहता. विचार कहां से कहां ले जाते? एक छोर से दूसरे छोर में बहुत दूरी तो होती, लेकिन कहीं न कहीं एक महीन सा तारतम्य अवश्य होता. मैं जिन विचारों में खोया रहता था, वे बौद्धिक नहीं होते थे, वरन् बहुत बुनियादी सवालों जैसे होते थे. उन्हें जिज्ञासा भी कहा जा सकता है - एक बाल जिज्ञासा- जैसे दुनिया क्या है? यह कहां से शुरू हुई? सबसे पहला मनुष्य कौन था? अंतरिक्ष के अन्य गृह, उपगृह कैसे हैं? क्या उनमें भी जीवन है? जब एलियन्स एवं उड़नतश्तरियों के बारे में पढ़ा तो बहुत सारी जिज्ञासाएं एवं प्रश्न मन में उठते. मसलन परगृही कैसे होते हैं? इन्हें सर्वप्रथम किसने देखा? उनके होने के प्रमाण क्या हैं? यदि कोई प्रमाण है भी तो उन्हें हम क्यों नहीं खोज पाये? वे किस गृह से आते हैं? क्या हमारा विज्ञान उनके विज्ञान से कमतर है? इस तरह के बहुत सारे जिज्ञासु प्रश्न मन में उथल-पुथल मचाये रखते. वैसे थोड़ा ठहरकर सोचा जाये तो उपरोक्त भौगोलिक प्रश्नों में से कई प्रश्नों के उत्तर आज भी नहीं खोजे जा सके हैं.

बगीचे में बैठकर घंटों फूलों और उन पर बैठे भौरों को निहारता. पक्षियों के कलरठा, नदिया की कल-कल कानों में मधुर रस घोलते, पेड़-पौधों एवं फसलों की हरियाली व प्रभात के बालसूर्य को निहारते हुए मुझे अद्भुत आत्मसंतोष एवं सुख मिलता. इतना सुख कि अब उसे शब्दों की शक्ल में बांधना, मुमकिन नहीं. इस दौरान मुझे हिंदी की पाठ्यपुस्तक में प्रकाशित कवियों की जीवनियां एवं कविताएं पढ़ने में विशेष आनंद आने

लगा. शुरुआती और कुदरती तौर पर उस समय ये मेरे भविष्य में कवि होने के लक्षण कहे जा सकते हैं. कुछ समय बाद मैं एकांत या छत पर बैठकर चित्र बनाता और तुकबंदियां लिखा करता. मां खाने के लिए बुलाती रहती और मैं घंटों नहीं आता था. बस बोल देता - 'अभी आया मां.' मां कहती - 'यह लड़का पागल है. इसे अपने खाने की ही फिक्र नहीं रहती. न तो इसे खाने का शौक है और न ही पहिने का. यह अपनी बराबरी वाले बच्चों के साथ खेलता भी नहीं. बस अकेला बैठा-बैठा पता नहीं क्या लिखा करता है? मां यह शिकायत अक्सर किया करती और मैं बस हंस भर देता.

जब भी छुट्टियों में गांव जाता तो शाम को पिताजी जब 'रामचरित मानस' का पाठ करते तब मैं भी उनके साथ बैठकर सस्वर 'मानस' पाठ करता. मेरी लय और गायन से पिताजी एवं अन्य पारिवारिक श्रोता खुश होते और तारीफ़ करते. फलतः धीरे-धीरे 'मानस' में मेरी रुचि बढ़ती गयी. मेरी साहित्यिक अभिरुचि में भी 'मानस' का योगदान है. 'मानस' विश्व साहित्य की एक ऐसी साहित्यिक कृति है जिसमें जीवन के हर पक्ष को उसकी संपूर्ण खूबसूरती के साथ न सिर्फ़ उभारा गया है वरन् उनको समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में भी देखते हुए उनका समाधान भी जीवन, संघर्ष एवं रिशतों के संदर्भ में सुझाया गया है. यही कारण है कि विश्व की लगभग सभी भाषाओं में 'मानस' का अनुवाद हो चुका है. और वह घर-घर में लोकप्रिय है. 'मानस' के साथ विडंबना यह कि अधिकांश लोगों ने उसे लाल कपड़े में बांधकर सिर्फ़ पूजा की वस्तु बना दिया है. जबकि उसका निरंतर अध्ययन होना चाहिए. एक पाठक और आलोचक की दृष्टि से भी. मानस के समग्र अध्ययन की आवश्यकता है, जिसमें पूर्वाग्रह न हो. पिताजी ने अपने अच्छे-बुरे समय में मानस की चौपाइयों एवं प्रसंगों के उदाहरण दे-देकर अपने आपको ढाढ़स बंधाया. 'मानस' आज भी उनके लिए नदी में नाव की तरह है. इसलिए वे कभी उसकी गहराई से नहीं घबराये.

साहित्य सामाजिक परिवर्तन का आधार भी है. संपूर्ण समाज, उसके पास उपलब्ध साहित्य, संस्कृति एवं परंपराओं से कुछ न कुछ ऊर्जा ग्रहण करता है और उसी के आलोक में जीवन की टेढ़ी-मेड़ी डगर पर चलता भी है.

परिवार में कृषि ही जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन थी. पिताजी ने हायर सेकेंड्री परीक्षा पास करने के बाद वन-आरक्षक और फिर पटवारी की नौकरी की और दोनों ही सरकारी

नौकरियां रास नहीं आने के कारण छोड़ दीं. इस प्रकार वे पुनः खेती-बाड़ी के काम में लग गये. पिताजी ही चार भाइयों में पढ़-लिख सके. घर लौटकर उन्होंने घर एवं कृषि का राज-काज सम्हाला. उन्होंने जी-तोड़ मेहनत की. वे दिन-रात गृहस्थी की गाड़ी में जुटे रहे. उन्होंने कभी भी अपने कंधे नहीं डाले. घर में परिश्रम का स्वाभाविक माहौल था. इसलिए जब भी मैं घर जाता, खेती-बाड़ी के छोटे-छोटे कामों में हाथ बटा लिया करता. इसका लाभ यह हुआ कि मेरे भीतर से आलस्य बिल्कुल गायब हो गया और कृषि के प्रति रुचि जागृत होती चली गयी. फलस्वरूप पिताजी के अंदर यह विश्वास जागा कि मैं उनकी विरासत को सम्हाल पाऊंगा.

वर्ग चेतना एवं जीवन-संघर्ष की समझ मेरे अंदर सिर्फ किताबों को पढ़कर ही नहीं आयी बल्कि वह मेरे अपने जीवनानुभवों और खुरदरे यथार्थ से उपजी एक सच्ची अनुभूति थी. कविता लेखन अध्ययन के समानांतर चलता रहा. जब भी कोई घटना, अन्याय या शोषण से दर्शक या भोक्ता के रूप में साक्षात्कार होता तो मन विचलित हो जाता. सोचता, काश! मेरे हाथ में किसी न किसी रूप से व्यवस्था होती तो इस अन्यायी/अपराधी को तुरंत दंड देता. एक आक्रोश उस उत्पीड़न की प्रतिक्रिया में उपजता, जो मन को बेचैनी के समंदर में डुबोये रखता. यह आक्रोश सिर्फ क्लम के माध्यम से कविता रचकर ही संतुष्ट होता. इससे जायज़ गुस्से को एक दिशा मिली, जिसमें वह अभिव्यक्त हुआ और जाया नहीं हुआ. यह कॉलेज के दिन थे.

कवि के रूप में पहचान बननी शुरू हो गयी थी. उसी समय मैं प्रगतिशील लेखक संघ का सदस्य बन गया. उससे वैचारिक सोच प्रबल हुई. समकालीन कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों से प्रलेस के कार्यक्रमों में परिचय हुआ. उनसे बातचीत का मौका तो मिला ही, साथ ही उनकी रचनाओं को सुनकर एक प्रकार से परिपक्वता, निरंतर आती चली गयी. बड़े-बड़े कवि-लेखकों की ढेरों रचनाएं पढ़ीं. बाद में प्रलेस की स्थानीय इकाई के कुछ साथियों एवं प्रमुख कवियों से वैचारिक एवं व्यक्तिगत मतभेदों के चलते प्रलेस को छोड़कर समान, विचारधारावाले लेखक संगठन जनवादी लेखक संघ (जलेस) में सदस्यता ली. समयानुसार क्रमशः लेखन को एक दिशा मिलती चली गयी. समानांतर अपनी कविताएं प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में भेजता रहा. शुरुआत में कुछ रचनाओं की वापसी से हतोत्साहित हुआ. तो कुछ के छप जाने से नयी ऊर्जा का संचार भी हो सका. हिम्मत बढ़ी और रचना धर्म की नदी सवेग प्रवाहित



जन्म - २ अप्रैल १९७२,

ग्राम-गनिहारी, जिला - अशोकनगर (म.प्र.)

हिंदी साहित्य एवं राजनीति शास्त्र में स्नातकोत्तर.

प्रकाशन : 'समकालीन जनमत', 'कथाबिंब', 'कथन', 'अक्षरा', 'वसुधा', 'युद्धरत आम आदती', 'गुड़िया', 'हंस', 'वागर्थ', 'साक्षात्कार', 'अब', 'दस्तावेज', 'काव्यम', 'कादंबिनी', 'वेबदुनिया', 'कृत्या' सहित देश की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं एवं आलोचना एवं कहानियां प्रकाशित.

विशेष : आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण. शिक्षक आंदोलन से जुड़ाव. अपने नेतृत्व में सुप्रीम कोर्ट के माध्यम से मध्यप्रदेश में ग्यारह हजार शिक्षकों की नियुक्ति, 'मानवाधिकार जन निगरानी समिति' में राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य. अध्यक्ष-जनवादी लेखक संघ, इकाई-अशोकनगर.

संप्रति : मध्य प्रदेश शासन के स्कूल शिक्षा विभाग में शिक्षक

होने लगी. इस दरम्यान आकाशवाणी से कविता पाठ प्रसारित होने लगा. रेडियो पर बार-बार कविताएं प्रसारित होने से एक अलग श्रोता वर्ग बनता गया. इस बीच 'समकालीन जनमत', 'कथाबिंब', 'कथन', 'अक्षरा', 'वसुधा', 'दस्तावेज', 'हंस', 'युद्धरत आम आदती', 'अब', 'गुड़िया', 'वागर्थ', 'कादंबिनी', 'काव्यम', एवं वेब पत्रिका 'वेबदुनिया', 'कृत्या' सहित देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर रचनाएं प्रकाशित होती रहीं. साथ ही दूरदर्शन से भी काव्य पाठ प्रसारित हुआ.

कविताओं पर पाठकों की प्रतिक्रियाओं ने रोमांचित किया. साथ ही लगातार लिखने के लिए प्रेरित भी किया. आज मैं देशभर में उन तमाम पाठकों को हृदय से धन्यवाद प्रेषित करता हूं, जिन्होंने मेरी कविताओं को पढ़कर अपनी अमूल्य प्रतिक्रिया पत्रों के माध्यम से मुझे भेजी. लेखक को पाठक द्वारा लिखे गये एक पोस्टकार्ड की क्रीमत और महत्व एक लेखक ही जानता है.

जो रचनाएं मुझे प्रभावित करती हैं उनके लेखकों को मैं भी पत्र अवश्य लिखता हूं. हालांकि आज समूची पत्र-विधा पर संचार क्रांति का खतरा मंडरा रहा है.

कविता मेरी रगों में रक्त के साथ घुलकर दौड़ती है. यदि कोई कहे कि मैं लिखना छोड़ दूं, तो यह किसी भी हालत में मुमकिन नहीं. कविता मेरे लिए शौक नहीं बल्कि जीवन का धर्म है जिसे मुझे सहर्ष निभाना है. कविता मेरे लिए अंधेरे और अन्याय से लड़ने के लिए क्रमशः मशाल और हथियार है. जिन्हें मुझे दोनों हाथों में थामे ही रहना होगा. हर घटना के बाद स्वतः रचना जन्म लेती है और हर रचना के बाद एक ताज़गी भरा संतोष भीतर तक उतर जाता है. लेखन के नशे को सिर्फ लेखक ही जान सकते हैं और एक हद तक रसिक पाठक भी 'नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन-रात' की तरह.

साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम तो मैं सदैव मानता रहा हूं. कार्ल मार्क्स, रूसो और लेनिन की कृतियों के दम पर ही लोगों में चेतना आयी और उन्होंने (सर्वहारा वर्ग ने) अपने अधिकारों की प्राप्त के लिए बड़ी-बड़ी क्रांतियां कीं. हर बार रचना करते हुए रचनाकार सिर्फ रचना ही नहीं करता वरन् स्वयं को भी रचता है.

रचनाकर्म मेरे लिए सिर्फ कागज़ और कलम तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि मैं अपने व्यवहारिक और दैनिक जीवन के पन्नों पर यथासंभव कर्म और संघर्ष की रेखाएं खींचता रहा. एम.ए. एवं शिक्षक प्रशिक्षण पूर्ण करने के पश्चात जब नियमानुसार शिक्षक की नौकरी देने के अपने वादे से मध्यप्रदेश सरकार साफ़ मुकर गयी तब कविताओं के शब्दों को जीवन के यथार्थ में परखने का मौका आ गया. मैंने इसे चुनौती के रूप में स्वीकार भी किया. सबसे पहले शिक्षकों को एकत्र कर जिला स्तरीय कमेटी बनायी. फिर धीरे-धीरे संभाग और बाद में पूरे प्रदेश भर में प्रशिक्षित बेरोज़गार शिक्षकों का एक प्रांतीय संगठन 'मध्य प्रदेश नवीन चयनित शिक्षक संघ' बनाया. फिर इस संगठन की प्रदेश के सभी जिलों एवं तहसीलों में इकाइयां गठित की गयीं. मैं ही इस संघ का संस्थापक था. अतः साथियों ने मुझे इस संगठन का प्रांताध्यक्ष चुना. प्रदेश के सभी पैतालीस जिलों के जिलाध्यक्षों से पत्रचार एवं अन्य माध्यमों से संपर्क में रहता और शासन पर नियुक्ति के लिए दबाव बनाने हेतु आंदोलन, धरना एवं प्रदर्शन आदि का रास्ता अपनाता. मेरी तरह पीड़ित इस संघ मेरे ग्यारह हजार साथी थे.

कई बार कोई तारीख निश्चित करके विधानसभा सत्र के दौरान भोपाल में मैंने विशाल आंदोलन, धरने एवं प्रदर्शन किये.

बाकायदा प्रशासन को पूर्व सूचनाएं दीं. नियत तिथि के एक दिन पूर्व ही शाम को हम लगभग नौ-दस हजार साथी ट्रेनों एवं बसों द्वारा भोपाल के लिए कूच कर जाते और सुबह हम प्रदेश की राजधानी भोपाल की सड़कों पर होते. हमारे चारों ओर एहतयातन भारी पुलिस फोर्स होता. लाठी चार्ज की आशंका सदैव बनी रहती. एक बार मेरे नेतृत्व में साथियों ने सत्र के दौरान विधानसभा घेरने की कोशिश की. आगे बढ़े तो पुलिस ने बेरीकेट्स लगाकर रोक लिया. जब जबर्दस्ती हमने उन्हें लांघकर आगे बढ़ने की कोशिश की तो वहां भारी संख्या में मौजूद पुलिस फोर्स ने बेरोज़गार शिक्षकों पर लाठियों से जमकर प्रहार किया. हमारे सैकड़ों साथी घायल हो गये. जिन्हें अस्पताल में भर्ती कराया गया. स्थिति की नजाकत समझते हुए अपनी मांगों के संदर्भ में हमारे प्रतिनिधि मंडल को बल्लभभवन स्थित मुख्यमंत्री कार्यालय में मुख्यमंत्री से मिलाया गया. जहां मेरे द्वारा नियुक्ति की एकसूत्रीय मांग को मुख्यमंत्री ने मानने से इन्कार किया तो चर्चा के दौरान ही हमारी मुख्यमंत्री से बहस हो गयी. बाद में उन्होंने झूठा आश्वासन देकर आंदोलन खत्म करवा दिया. तत्पश्चात अपने वादे से भी मुकर गये. ऐसा हमारे साथ कई बार हुआ. इसी प्रकार जिला एवं तहसील स्तर पर भी हमने आंदोलन किये और गिरफ्तारियां दीं सरकार द्वारा नियुक्ति न किये जाने पर माननीय उच्च न्यायालय (जबलपुर) में ग्यारह हजार शिक्षकों की नियुक्ति के लिए एक याचिका दायर की, जो लंबी सुनवाई के बाद खारिज़ कर दी गयी. तब माननीय सुप्रीम कोर्ट में अपील की. दुर्भाग्य से वह भी खारिज़ कर दी गयी.

याचिका खारिज़ होते ही प्रदेश भर के हमारे ग्यारह हजार साथियों के सपनों पर जैसे वज्रपात हो गया. निराशा की एक ठंडी लहर उन्हें भीतर तक भिंगोती चली गयी. इस नैराश्य से उपजी काहिली को फिर किसी ने तोड़ने की कोशिश तक नहीं की. सब यह समझकर कि सरकारी शिक्षक बनने का उनका सपना अब कभी पूरा नहीं होगा, अपने-अपने पुश्तैनी धंधों में लग गये. उनमें से अधिकांश देश की आबादी के अनुपात की तरह किसान ही थे. सो गांव लौटकर खेती करने लगे और शेष अपने-अपने अन्य पुश्तैनी काम. मेरे लिए यह परिस्थिति एक बड़ी चुनौती थी. क्योंकि संगठन का प्रांतीय अध्यक्ष होने के नाते सारी जीत-हार का जिम्मा मेरा ही था. कम से कम नैतिक तौर पर तो था ही. एक बार तो मन में आया कि इस्तीफ़ा दूं. लेकिन यह एक शूतुरभुर्गी समाधान था. मैं केस भले ही हार गया लेकिन हिम्मत नहीं हारा था. साथियों से कहा कि मैं आपके लिए यू.एन.ओ. तक जाऊंगा. पर वे मानने को तैयार नहीं थे कि अब भी कुछ हो सकता है. अपने

सुरेन्द्र रघुवंशी की तीन कविताएं

सीमा नहीं

ऋतुएं तो आनी-जानी हैं,
नीले आसमान पर कल
काली घटाएं होंगी
भयंकर बरसात के बीच
तेज आंधी होगी,
रुई के पर्वतों की तो खैर नहीं
पेड़ भी हिल जायेंगे एक बार तो,
कुछ मिट्टी कटकर बह जायेगी
पानी की गति के साथ
धरती में हो जायेंगे कुछ गद्दे
टूट भी सकती हैं
पेड़ों की कुछ शाखाएं.
लेकिन चिड़िया !
एक-एक तिनके के लिए
तुम्हारी यात्रा की सीमा नहीं,
तुम्हें देखकर मेरी थकान के शरीर पर
लग जाते हैं
अपार शक्ति के पर.

प्रजा

सारी प्रजा मवेशियों में तब्दील होकर
बेजुवान गाय बन गयी है
जिसे खदेड़ रहे हैं
व्यवस्था के मुश्तंड चरवाहे,
हरे-भरे मैदान पर कब्जा जमाकर,
इन मवेशियों को भगा रहे हैं
बंजर और तपती चट्टानों वाले पठार की ओर.
जिस ओर हांक दिया जाता है समूह में उन्हें
वे उस ओर अपनी गर्दन नीची करके
चलने लगते हैं सहर्ष
जिस दिशा में घेर दो उन्हें वे घिर जाते हैं निर्विरोध.
मवेशियों में तब्दील हो चुकी प्रजा
भूल गयी है अपने नुकीले सींगों का अर्थ
वह सिर्फ रंभाती है,

हुंकार नहीं भरती.

व्यवस्था का चरवाहा

फिर लाठी फटकारता है

संकेत की दिशा में

फिर से भयातुर हो दौड़ने लगता है

मवेशीनुमा प्रजा का समूह.

युद्ध

एक दिन की कोई झड़प नहीं
हर दिन, हर महीने और हर वर्ष के प्रति पल में
एक अनवरत युद्ध है ज़िंदगी.
युद्ध जो खुद से शुरू होता है
और विराट तक फैलता जाता है,
जीत सबसे मुश्किल होती है यहीं पर.
युद्धभूमि में प्रस्थान से रोकती हैं
सैकड़ों बेड़ियां,
एक अनजान चीत्कार से बहरे हो जाते हैं कान,
एक भयंकर अंधड़ की धूल
आंखों से देखने की शक्ति
छीन लेती है कुछ समय के लिए.
अपने शरीर से
डर के कपड़े उतार फेंकना,
अखाड़े में आकर जीत की ओर बढ़ने की
पहली शर्त है.
जोश में फड़कती दिखनी चाहिए मांशपेशियां
और आंखें चौतरफा घूमती हुई चौकन्नी,
खुद रहें तैयार
बलिष्ठ भुजाओं के अनगिनत प्रहार
सहने के लिए ही नहीं
बल्कि मौक़ा मिलने पर पलटवार के लिए भी.
हर रास्ते पर ऐसे अनगिनत अखाड़े हैं,
अलग-अलग शक्ल में
जहां कमी नहीं है मुश्तंडे पहलवानों की.
लड़ना जीने की शर्त है
(अन्यथा बचने का कोई तरीक़ा नहीं)
दुम दबाकर भागने का रास्ता
सिर्फ़ मौत की ओर जाता है.

लघुकथा

आहत राष्ट्र

डॉ. सुरेंद्र मंथन

वह सड़क-किनारे बेहोश पड़ा था। घायल, अस्त-व्यस्त, खून-मिट्टी से लथपथ। नज़दीक ही उसका सामान बिखरा पड़ा था। उसके चारों ओर भीड़ थी। भीड़ परेशान थी।

हिम्मत बांध कर एक हाथ आगे बढ़ा। उसने उसके अधनंग शरीर को रूमाल से ढक दिया।

देखा-देखी एक दूसरे हाथ ने नज़दीक पड़े चश्मे को उठाकर उसके चेहरे पर चिपका दिया।

तीसरे हाथ ने उसके बिखरे बालों को संवार दिया।

वह सड़क किनारे बेहोश पड़ा रहा। उसके शरीर से खून अभी भी टपक रहा था।

भीड़ बढ़ती गयी। भीड़ में उत्साह था; वह आदमी को मरता

देखना नहीं चाहती थी।

बेहोशी घायल आदमी का साथ नहीं छोड़ रही थी। तब रास्ता बनाता एक आदमी आगे बढ़ा। उसने भीड़ को छितरा दिया। वह झुक कर घायल आदमी के कानों में कुछ फुसफुसाया। घायल आदमी की आंखें खुल गयीं। हल्का-सा सहारा पाकर वह अपने पांवों पर खड़ा हो गया। उसने कपड़े झाड़े और बिखरा सामान संभालने लगा।

‘तुमने उसके कान में कौन-सा मंत्र फूंक दिया भाई?’ मैंने आश्चर्यचकित स्वर में पूछा।

इससे पहले कि वह कुछ कहता, घायल आदमी बड़बड़ाया- ‘पांव पर खड़े होने का मंत्र.’

२७११/३, गांधीनगर, बंगा (पंजाब) १४४५०५

अंतिम प्रयास में कुछ साथियों को लेकर दिल्ली यात्रा की और कोई सुदृढ़ आर्थिक आधार न होने के बावजूद सुप्रीम कोर्ट में देश के नामी सीनियर एडवोकेट श्री ओ.पी.शर्मा से चर्चा कर उन्हें केस सौंपा।

श्री ओ. पी. शर्मा वही वकील हैं जो बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी की ओर से अयोध्या मामले में वकील हैं। वह कांग्रेस के लीगल सेल के राष्ट्रीय अध्यक्ष भी रह चुके हैं। संजय गांधी के निधन के पश्चात पू. प्रधानमंत्री स्व.श्रीमती इंदिरा गांधी ने श्री धीरेंद्र ब्रह्मचारी एवं श्री. ओ. पी. शर्मा को ही राजीव गांधी को राजनीति में आने के लिए मनाने की जिम्मेदारी सौंपी थी। वे गांधी परिवार के बहुत घनिष्ठ रहे हैं। राष्ट्रीय राजनीति के ऐसे पहलू एवं रहस्य श्री शर्मा के पास हैं जो दिलचस्प हैं। कई बार उन्होंने दिल्ली स्थित अपने निवास पर मुझसे चर्चा के दौरान उनका सविस्तर जिक्र भी किया है। तब मैंने उनसे अपने सारे संस्मरण सिलसिलेवार करके एक किताब लिखने का आग्रह कई बार किया था। हाल ही में शर्मा जी का फोन आया था कि देर से ही सही वे मेरे सुझावानुसार वह किताब लिख रहे हैं। उन्होंने यह भी जोड़ा कि किताब मूल रूप से अंग्रेजी में लिख रहे हैं। बाद में उसका हिंदी संस्करण भी आयेगा।

खैर, शर्माजी ने हमारा केस उस पुनर्विचार याचिका में जितवा दिया। प्रदेश में ग्यारह हजार शिक्षकों की नियुक्ति हो सकी। मुझे यश मिला। आलोचकों का मुंह स्वतः ही बंद हो गया। मेरा जगह-जगह स्वागत हुआ तो लंबे संघर्ष की सारी थकान जाती रही। सफलता की नायिका जब मिलती है तब हम स्वतः ही नायक हो जाते हैं और उसके अतीत के नखरे एवं बेवफाइयां भूल जाते हैं। विस्तार भय से इस विषय को यहीं समेटना होगा। इस प्रकरण से मेरा

विश्वास अटल हो गया कि यदि हम दृढ़ निश्चय का सहारा लेते हैं तो सफलता हमारा समर्थन करती है। कि दुनिया में असंभव कुछ भी नहीं है। यह मेरे लिए सिर्फ वाक्य भर नहीं हैं, बल्कि जीवन की प्रयोगशाला में इन पर किया गया प्रयोग सफल रहा है। जिसने अपनी ज़िंदगी के समूचे आनंद से वंचित रह जाता है।

२००३ में जब मेरे कविता संग्रह ‘जमीन जितना’ का गृह नगर अशोकनगर में विमोचन करते हुए हिंदी कविता के प्रतिनिधि एवं सुविख्यात कवि राजेश जोशी ने संग्रह की कविताओं को अपनी प्रिय कविताएं कहते हुए उनके बिंब एवं प्रतीक विधान तथा विषय चयन आदि की प्रशंसा की तो अच्छा लगा। यह सच है कि जब आपका सही मूल्यांकन होता है और पूर्वाग्रह रहित सकारात्मक टिप्पणी आपकी रचनाओं के प्रति होती है, तो इस यथार्थ समीक्षा से निश्चित तौर पर एक रचनाकार का मनोबल बढ़ता है। इसका सीधा प्रभाव उसके भावी रचनात्मक लेखन पर पड़ता है। हालांकि आज साहित्य में आलोचना की जो राजनीति चल रही है वह बहुत ज्यादा उल्लेखनीय नहीं है। ऐसी ही राजनीति पुरस्कारों की भी है। लेकिन जो सच्चे रचनाकार हैं वे इन बातों की परवाह किये बगैर अपना रचनाधर्म निभाते हैं और एक सृजनधर्मी का यही दायित्व है।

कुल मिलाकर ऊर्जादायी साहित्य के सफ़र और जीवन के सफ़र में मेरे लिए कोई अंतर नहीं है। दोनों ही विविध रंगों से भरे हुए और आनंददायक हैं।

महात्मा बाड़े के पीछे, बायपास रोड के पास,
अशोक नगर (मध्यप्रदेश) ४७३-३३१
फोन -०९९२६६२५८८६



‘रचनात्मकता पार्ट टाइम जॉब नहीं है!’

-डॉ. सरोज कुमार

(इन दिनों साक्षात्कार विधा का रूप बहुत कुछ रुढ़िबद्ध हो चुका है. वही बंधे-बंधाये प्रश्न और उनके नापतौल कर दिये गये उत्तर. ऐसे में बहुत से आवश्यक मुद्दे छूट जाते हैं और अनावश्यक/असंबद्ध विवरण प्रमुख हो उठते हैं. यहां पर प्रस्तुत है, कवि सरोजकुमार एवं कथाकार विलास गुप्ते के बीच ‘कथाबिंब’ के लिए हुई अनौपचारिक बातचीत के अंश.)

“ आपाधापी और बदलती रुचियों के इस युग में साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों को भविष्य में झांकने के लिए मज़बूर कर दिया है. क्या ऐसा नहीं लगता कि आने वाले समय में हमें साहित्य और विशेषकर कविता की एक्सपायरी डेट के बारे में सुनने को मिल जाये!

एक्सपायरी डेट दवा की होती है, दर्द की नहीं और कविता दर्द के निकट है. इसलिए उसकी एक्सपायरी डेट वही हो सकती है, जो मनुष्यता की मानी जाये.

“ ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि पाठक कविता से क्या चाहता है.

इसका उत्तर तो मैं पाठक बनकर ही दे सकता हूं.

“ यह बिलकुल सही है, क्योंकि लेखक पाठक भी होता है. मेरा मतलब यह भी है कि कवि अपनी कविताओं से क्या चाहता है?

कवि यही चाहता है कि जिस भावना, विचार, दृष्टिकोण को वह अभिव्यक्त रहा है वह पूरी ताकत से संप्रेषित हो जाये.

“ इसी से जुड़ा मुद्दा यह भी है कि पाठक कविता से क्या चाहता है?

पाठक मूलतः न विचार चाहता है, न भावना. वह कवि से किसी नयी उक्ति, अभिव्यक्ति और नयी बात की अपेक्षा रखता है. नयी बात में यह बात भी सम्मिलित है कि यदि बात पुरानी हो तो वह उसे मौलिक और नयी अभिव्यक्ति में पाना चाहता है. उदाहरण के लिए, यदि किसी कविता का शीर्षक हो ‘प्रेम’ तो ‘प्रेम’ शब्द और भावना के रूप में नयी बात नहीं है. पर पाठक इस कविता को इस तरह अपेक्षा और जिज्ञासा से पढ़ेगा कि देखें प्रेम के किसी रूप को और प्रेम को किस रूप में यह कविता अभिव्यक्त करती है. पढ़ने के बाद उसके मन में कवि के प्रति सराहना और संतुष्टि का भाव आ सकता है अथवा वह असंतुष्ट होकर मनपसंद

मूल्यांकन कर सकता है.

“ मतलब यह कि पाठक की दृष्टि में भी कई बार कविता, कविता नहीं रहती?

कविता अगर कविता है तो वह हमेशा कविता ही रहेगी. उसका पुराना हो जाना अथवा किसी को पसंद आना न आना अलग बात है. ज़रूरी नहीं कि बिहारी के दोहे सबको पसंद आये अथवा मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता ‘अंधेरे में’ सबको प्रभावित करे. निराला की ‘जुही की कली’ तो आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे काव्य-पंडित को पसंद नहीं आयी थी. पाठक की रुचियां भी अपनी निर्णायक भूमिका रखती हैं. अभी कुछ ही दिनों पूर्व ख्यात समीक्षक डॉ. नामवर सिंह ने सुमित्रा नंदन पंत की अधिकांश कविताएं कूड़े में फेंक देने लायक मानी थीं. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तो तुलसीदास को कवि ही नहीं मानते थे. ज़रूरी नहीं कि सब लोग ऐसा मानें. सबकी अपनी - अपनी पसंद और अपना-अपना मूल्यांकन.

“ ऐसे में तो काव्य-रसास्वादन के कोई प्रतिमान ही नहीं हो सकते.

प्रतिमान तो हो सकते हैं और प्रतिमान बनाये भी गये हैं, पर वे सब पर समान रूप से चरितार्थ नहीं होते, क्योंकि मनुष्य के सोच, विचार और जीवन के प्रति इतने और दुराग्रह हैं कि सब बातें सब पर समान रूप से लागू होना असंभव है.

“ क्या इसी कारण आलोचना के अलग-अलग स्कूल कायम हो जाते हैं?

ठीक कहा. इसी कारण स्कूल अलग-अलग हो जाते हैं, नये-नये वाद और भिन्न-भिन्न शिविर बन जाते हैं. कविता का अहित तब होता है, जब शिविरों में बंटे हुए लोगों की अनुदारता अन्य स्कूलों/वादों/शिविरों की कविताओं को कविता ही नहीं मानने की ठान लेती है.

“ ऐसा तो पहले से होता रहा है. देव और बिहारी को लेकर विगतकाल में बहुत घमासान हो चुका है.

यह सदैव होता रहेगा, क्योंकि मनुष्य की मूल प्रकृति प्रवृत्ति में जो निरंतरता है वह स्वभावगत है, कालगत नहीं.

“ आप एक लंबे अरसे से इस क्षेत्र में हैं और काव्य जगत के बाहरी-भीतरी वातावरण को आपने देखा परखा है. अपनी ही शुरु की और आज की कविताओं में क्या फ़र्क महसूस होता है?

प्रारंभ में किशोरावस्था की अनुभूतियों और पसंदगी की कविताएं मैं लिखता रहा. मूलतः वे रोमांटिक हैं. अधिकांश गीत हैं. कॉलेज जीवन में जो संसार मेरे आसपास था, उसे ये कविताएं खूब पसंद भी आती थीं. उनके पसंद आने ने भी मुझसे वैसी कविताएं बड़ी संख्या में लिखवायीं. पर अपनी कविता के इस रूप या उसके एकमात्र इस रूप से मुझे आगे संतोष नहीं मिला और दीन-दुनिया से अपनी असहमतियों और असंतोष ने मेरी व्यंग्यात्मक रुझान को गति दी. मेरे इस रुझान को ख्यात पत्रकार राजेंद्र माथुर ने पहचानकर मुझे दैनिक नईदुनिया इंदौर में, प्रति सप्ताह एक व्यंग्य कविता लिखने के लिए प्रेरित एवं निमंत्रित किया. “स्वांतःदुखाय” शीर्षक स्तंभ में मैंने उनके दैनिक में पांच सौ से अधिक कविताएं लिखीं.

“ क्या भविष्य में कोई नया रुझान आने की संभावना है ?

किसी रुझान की कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती. कुछ भी हो सकता है और कुछ नहीं भी हो सकता है. नये रुझान से अधिक महत्वपूर्ण है कि मैं रचनात्मकता में सक्रिय रहूं.

“ अब जो मैं कहने जा रहा हूं, उसे मजाक में न लेकर गंभीरता से लेने की ज़रूरत है. हमने देखा है कि हिंदी कवि की यात्रा धोती-कुरते, या कुरते-पजामे से होती हुई आज टाई-सूट तक आ गयी है. यह केवल बाह्य परिवर्तन है या कविता के मानस में परिवर्तन का प्रतीक भी?

ऐसा परिवर्तन लगभग समान अनुपात में हर क्षेत्र के व्यक्तियों में आप पायेंगे. इन दिनों का सेठ पगड़ी-कंठहार-अचकन नहीं पहनता. महिलाएं भी नयी-नयी वेशभूषा में हैं. युवक भी परंपरागत पोषक में नहीं हैं. यह पोषाकों की प्रगतिशीलता और सभ्यता की करवटों के साथ नयी पसंदगियों का परिणाम है. इसका कविता के मानस में परिवर्तन से लेना-देना नहीं है.

“ अक्सर आरोप लगाया जाता है कि आज की कविता आम जनता से दूर चली गयी है. यह कहां तक ठीक है?



डॉ. सरोजकुमार

इस आरोप का आधार यह भ्रम है, कि कविता कभी आम जनता में बहुत लोकप्रिय थी. कविता आम जनता की चीज़ कभी नहीं रही. आम जनता को कविता के लिए अवकाश भी नहीं है. आरती/भजन गा लेना काव्य प्रेम नहीं है. कविता सदैव कुछ लोगों को ही प्रिय रही है. अधिकांश कवियों के तो परिवारजन तक काव्य प्रेमी नहीं पाये जाते.

“ क्या आजीविका हेतु विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हुए भी अपनी रचनात्मकता का निर्वाह किया जा सकता है? या उसके लिए फ्री लांसर होना ज़रूरी है?

कविता अथवा रचनात्मकता ‘जॉब’ की तरह सुपरिभाषित कार्य नहीं होती. न हो सकती है. न उसकी ११ से ५ जैसी कोई नियमित कार्यावधि हो सकती है. रचनाकार जितना अपनी रचनात्मकता और उसे समृद्ध एवं पुष्ट करने वाले उपादानों के संसार में सक्रिय रहेगा, उतना ही सफलता की संभावनाएं उसमें होंगी. रचनात्मकता पार्ट टाइम जॉब नहीं है. न ही छुट्टी/फुर्सत का काम. इसके लिए एकाग्रता, वातावरण एवं अनुकूल स्थितियां परमावश्यक हैं. इसीलिए हम पाते हैं कि बड़े-बड़े साहित्यकारों को भी उनके ही परिजनों ने घास नहीं डाली. फिर, परिवार के भरण-पोषण का सांसारिक दायित्व रचनाकार के कंधों पर हो तो स्थितियां ऐसी नहीं हैं कि साहित्य के बल और भरोसे पर परिवार की आवश्यकताएं पूरी हो सकें. सारे साहित्यकार नरेश मेहता की तरह धैर्यवान व संतोषी नहीं होते, न परसाई की तरह अकेले, न शरद जोशी की तरह साहसी. साहित्यकार प्रायः जीवन में गहरे डूबा रहते हुए भी जीवन से कटाकटा प्रतीत होता है. क्योंकि जीवन इधर सांसारिक लिप्तता का पर्याय बना हुआ है. इसलिए वह विवश है पार्ट टाइम रचनाकार होने के लिए. मेरे लिए भी संभव नहीं था कि मैं मात्र कविताओं से जीवन/परिवार चला पाता.

“ कवि के रूप में सफलता के क्या मापदंड हो सकते हैं?

लड़की को बड़ी मत होने दो

तुम उधर क्या ऊंच रहे हो ?
इधर लड़की बड़ी होने लगी है-
धीरे-धीरे पांव पर खड़ी होने लगी है !
धरती को हिलाओ, लड़की को डिगाओ,
अगर वह सचमुच खड़ी हो जायेगी
तो हमसे भी बड़ी हो जायेगी !
फिर हाथ पसारती राखियों का क्या होगा ?
हमारी सौंपी बैसाखियों का क्या होगा ?
वह पांव पर खड़ी हो गयी, तो चलने भी लगेगी
नया-नया देखेगी, मचलने भी लगेगी !
संविधान देख लेगी, तो अधिकार मांगेगी
पिता की पास-बुक से कार मांगेगी !
फिर सनातन पगंडियों का क्या होगा ?
होनहारों की मंडियों का क्या होगा ?
उसे कंचे, पांचे और कौड़ियां ही झिलाओ,
सिलाई-बुनाई के झुनझुनों से खिलाओ !
उसे देवरानी, जिठानी की कहानी ही कहने दो
आंचल में दूध, पानी आंखों में रहने दो !
चादर को माथे की पगड़ी मत होने दो,
लड़की है, लड़की को बड़ी मत होने दो !

स्वाति दर्शन

कागज तो ऐसा चौराहा है
जहां कलम से, किसने
क्या क्या नहीं चाहा है.
पर कविता फरमाइशी लेखन नहीं है
और अगर है भी
तो सिर्फ मेरा.
जैसा मुझे दिखा,
वैसा मैंने लिखा.
जैसा मुझे सूझा,
वैसा मैंने बूझा.
स्वाति के बादल को
क्या फर्क पड़ता है.
बूंद सीपी में गिरे
या गटर में.
व्यवस्था की जिम्मेदारी म्युनिसिपैलिटी की है.
मुझसे जब टकरायी हकीकतें
मैंने उन्हें शब्दों में गा दिया.
अब मेरे शब्दों को दुहरा कर
चाहे वेश्याएं
पटारें अपने ग्राहक
चाहे देवांगनाएं रिझारें
अपने प्रभु को.

ये जो धुंधलका है, काफ़ी है!

उतने ही दिखो और देखो
जिसमें जिंदगी निरापद चली चले,
रोशनी की और ज़रूरत नहीं है
ये जो धुंधलका है
यही काफ़ी है !
अपनी सुनिश्चित मौत को
अफ़वाह मानते रहने में
जिंदगी का लुत्फ है !
पत्थर पर छेनी से
इतिहास खोदनेवालों से
कागज पर स्याही से
भविष्य गूदनेवाले
अटकलधर्मी बुरे नहीं !
रोशनी, संभावनाओं के मांडने लील कर
जो आंगन लीपती है

उस पर चलने से पैर जलते हैं !
ईश्वर कभी नहीं मिला
पंडितों को रोशनी में
वह रीझता रहा
फ़कीरों पर
गुफ़ाओं बियाबानों में !
रोशनी से झकाझक
दोपहर कैसी खाली-खाली है,
पर सुबह कितनी रसभरी
शाम कितनी लुभावनी !
आंखें बंद करने पर
जो दीखता है
वहां नहीं जा पाती
दूरबीन की आंख !
तुम फिर उड़ रहे हो,

ऊंचे और ऊंचे
रोशनी के शिकार को
वह फिर तुम्हारे पंख
जला डालेगी !
जिंदगी एक पहेली है
रोशनी एक उत्तर है,
पहेली का मज़ा
उत्तर की मौजूदगी में नहीं,
उसकी अनबूझ में छुपा है !
वह जो धुंधली- धुंधली
दिखाई दे रही है
वही जिंदगी है
और वह जो एकदम साफ़ है
मृत्यु है !

इस प्रश्न का उत्तर मुझे पाठक बनकर ही देना चाहिए. कवि की सफलता को मैं उसकी कविताओं की सफलता में देखता हूँ. मैं कहना चाहूँगा कि कवि का पद, प्रतिष्ठा, विपुल प्रकाशन, पुरस्कार, प्रशस्तियां आदि का महत्व उसकी कविता से रूबरू होते समय पाठक के लिए नहीं होता. कविता अगर उसे अपने में समेट पाती है, तभी वह उसके रचयिता को नंबर देता. चूंकि इन दिनों दुर्भाग्य से कविता के पाठक कम हो गये हैं इसलिए नंबर एकत्र करने के लिए कवि पुरस्कार आदि के पीछे अधिक दौड़ रहा है.

“ कभी कवी सम्मेलन काव्य संस्कारों की पाठशाला के रूप में जाने जाते थे. आज के उसके रूप को देखकर कैसा लगता है?

जब तालाब का पानी नीचे उतरता है तब चारों तरफ से उतरता. उसी तरह तमाम गिरावटों के साथ कविता के प्रति सुरुचि और गंभीरता का स्तर कवि सम्मेलनों में भी नीचे गिरा है. पहले कवि सम्मेलन ही काव्य रचियों की पाठशाला कहे जाते थे, अब पत्र पत्रिकाएं, आकाशवाणी, दूरदर्शन सभी जगह छोटी-बड़ी ऐसी पाठशालाएं खुल गयी हैं. कवि सम्मेलन से तात्पर्य उन आयोजनों से है, जिसमें काव्यपाठी कवि का जीवित साक्षात्कार श्रोताओं से होता है. कविता ऐसी चीज़ नहीं है कि वह श्रोताओं के बड़े समूह को काव्य पाठ के साथ साथ पूरी तरह समझ में आ सके. कविता ऐसी सरल चीज़ होती तो कवियों को पढ़ाने के लिए बड़े-बड़े प्राध्यापकों की ज़रूरत नहीं पड़ती. कवि सम्मेलन में सदैव ऐसी कविताएं ही सुनाई जाती रही हैं जो काव्य पाठ के साथ ही साथ श्रोताओं की समझ में आती जायें. अर्थ गांभीर्य की कविताएं कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हों, कवि सम्मेलन में नहीं सुनाई जातीं. मुक्तिबोध ने एक जगह लिखा है कि यदि श्रोता आल्हा-ऊदल सुनना चाहते हों तो उन्हें कामायनी नहीं सुनाना चाहिए. निराला भी कवि सम्मेलन के योग्य रचनाएं चुनकर सुनाते थे. कवि सम्मेलन में कविता और उसका परफॉर्मेंस/प्रस्तुति दोनों महत्वपूर्ण होते हैं, केवल कविता से काम नहीं चलता. उसी तरह केवल परफॉर्मेंस से भी नहीं चलना चाहिए. इधर कविता कम और परफॉर्मेंस अधिक हो गया है. कवि सम्मेलनों को लोकप्रिय बनाने की होड़ में कविता का स्तर भी गिरा है और दुर्भाग्य से चुटकुले मंच पर चढ़ चुके हैं.

“ आमतौर पर कहा जाता है कि टेक्नोलॉजी कलाओं की दुश्मन होती है, पर साहित्य का नाता केवल भावनाओं से नहीं होता है. उसका बौद्धिकता से भी गहरा संबंध है. या बौद्धिक उपकरणों से साहित्य का अंतर्जगत् परिपुष्ट होता है?



कैसे?

“ पुस्तकें, रेडियो, टीवी आदि.

इसका नवीनतम रूप है इंटरनेट.

“ बिल्कुल हिंदी की वेबसाइट, पत्रिका का इलेक्ट्रॉनिक रूपांतर है.

निश्चित ही वह ऐसा रूपांतर है, पर इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को मैं कलाओं का दुश्मन नहीं मानता. उपकरण तो साधन है, रचना नहीं. उपकरणों के उपयोग का कौशल रचनाकारों में होना चाहिए. नहीं हो, तो विकसित करना चाहिए. नये अन्वेषणों को प्रथम दृष्टि में परंपरागत विचारों की सदैव भर्त्सना सहनी पड़ी है. नयी टेक्नालॉजी के आगे लगाये जा रहे प्रश्न चिन्ह भी उसी प्रवृत्ति के द्योतक हैं.

“ हिंदी का लेखक कंप्यूटर से जुड़ रहा है, ऐसे में हिंदी वेबसाइट का क्या भविष्य है?

निश्चित ही उसके सुपरिणाम होंगे. यह भी एक माध्यम है. साहित्य इस माध्यम से भी अनेक ऐसे पाठकों तक पहुंच सकेगा जो न जाने कहां-कहां संसार के किसी कोने में हो सकते हैं.

“ उम्मीद करें कि हिंदी की सर्वांगीण वेबसाइट से एक नये क्रिस्म की साक्षरता विकसित होगी.

यदि इंटरनेट सर्वमुलभ हो सका तो निश्चित ही अभिव्यक्ति/संप्रेषण का फलक विस्तृत होगा. ऐसा होना लेखक और पाठक दोनों के हित में होगा.

“ उम्मीद करें कि वह दिन शीघ्र आयेगा.

वह अध्याय रोचक भी होगा.



मनोरम, ३७ पत्रकार कॉलोनी,

इंदौर-४५२०१८. फोन-(०७३१) २५६१९१९

विलास गुप्ते,

७२- पत्रकार कॉलोनी, इंदौर-४५२०१८



आश्रम और घर का द्वंद्व : रचनात्मक संवेदना

डॉ. रवींद्रप्रसाद सिंह

वैकल्य (उपन्यास) : डॉ. शिरीष गोपाल देशपांडे,
हिंदी अनुवाद : रमेश यादव,

प्रकाशक - उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन
हिंदी भवन, ६-महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ मू. ८० रुपये.

मराठी साहित्य का भारतीय साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। दलित-विमर्श के क्रम में दया पवार का एक उपन्यास है - 'अछूत' जिसने अछूतों की जिंदगी की कई परतों को उकेरा है। मराठी साहित्य में एक जाना-पहचाना नाम है सुप्रसिद्ध साहित्यकार तथा लेखक डॉ. शिरीष गोपाल देशपांडे का भी जिनके चर्चित मराठी उपन्यास 'वैकल्य' का उसी नाम से हिंदी अनुवाद साहित्यिक अभिरुचि संपन्न तथा मराठी व हिंदी भाषाओं पर गहरी पकड़ रखनेवाले तथा प्रभावपूर्ण अनुवाद करने वाले रमेश यादव ने किया है। यह पुस्तक उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ से साहित्य-कृतियों की अनुवाद योजना के अंतर्गत प्रकाशित हुई है।

यह कुष्ठरोग-समस्या पर केंद्रित एक ऐसा उपन्यास है जो विज्ञानपरक है और रोगजनित कई भ्रांतियों को सामाजिक दृष्टि से दूर करने का प्रयास करता है। वैसे कुष्ठरोग पर छिटपुट रचनाएं आती रही हैं लेकिन आश्रम और घर का द्वंद्व दिखाते हुए रचनात्मक संवेदना पहली बार संप्रेषित की गयी है। इसमें लेखक की स्वयं की रचनात्मक वैयक्तिक संवेदना तो है ही, साथ-ही-साथ पारिवारिक व सामाजिक संवेदना भी व्यक्त है जिसके मूल में हमेशा यह मर्म छिपा है कि कुष्ठरोगी भी हमारे परिवार व समाज के अंग हैं। उन्हें बहिष्कृत नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि यह रोग लाइलाज नहीं है। इतिहास व पौराणिक संदर्भ में भी ऐसे प्रसंग आये हैं जब यथासमय कुष्ठरोगी स्वस्थ हुए हैं। ओड़िशा के कोणार्क के पास चंद्रभागा में भगवान श्री कृष्ण के पुत्र की सूर्योपासना का प्रसंग हो या फिर बिहार के परंपरागत लोकपर्व 'छठ पूजा' के माध्यम से स्वस्थ होने के एक विकल्प का प्रसंग हो कुष्ठरोगियों के स्वस्थ होने की एक लंबी परंपरा है।

कुष्ठरोग पर विभिन्न भ्रांतियों को दूर करने तथा उसके निवारण के लिए कालांतर में महापुरुषों के सामाजिक कार्य होते रहे हैं। इनमें महात्मा गांधी से लेकर मदर टेरेसा तक के नाम शामिल

हैं। साथ ही वर्धा के आस-पास रहनेवाली विभूतियों यथा शिवाजीराव पटवर्धन, डॉ. श्रीमती प्रमिलाताई वारदेकर, बाबा आमटे, श्रीमती साधनाताई आमटे तथा मनोहर दीवाण आदि के नाम प्रमुखता से लिये जा सकते हैं। कई संस्थाएं भी इसके निवारण के लिए कृतसंकल्प हैं जिसमें गांधी मेमोरियल लेप्रसी फाउंडेशन, वर्धा का भी नाम शामिल है।

ललित गद्य में लिखा 'वैकल्य' उपन्यास उस तरह की संस्थाओं जैसा काम तो नहीं कर सकता परंतु यह 'जनजागृति' तथा 'लोकशिक्षा' जरूर दे सकता है जो इसका मुख्य उद्देश्य है और जिसे उपन्यासकार ने भी स्वीकार किया है। 'वैकल्य' का अर्थ होता है विकलता, क्षोभ, उत्तेजना, दोष, त्रुटि, न्यूनता, पंगुता, निर्बलता, शक्तिहीनता, अनस्तित्व, अपूर्ण तथा अधूरा।

'वैकल्य' की कथा 'शास्त्रीय दृष्टिकोण' तथा 'सामाजिक दृष्टिकोण' के ताने-बाने में चलती है और आश्रम तथा घर का द्वंद्व खड़ा करती है जिसमें घर की जीत होती है। इस उपन्यास में मुख्यतः दो ही पात्र हैं : एक हैं डॉ. वामन देवदत्त रावेरकर जो जनजागृति पैदा करने, लोगों को शिक्षित करने, अस्पताल का निर्माण करने, अस्पताल में रोगियों का इलाज करने तथा उनके स्वस्थ होने पर घर-परिवार में लौटने को प्रेरित करते हैं। दूसरे हैं - अप्पा मार्जनी गुरुजी जो स्वयं कुष्ठरोग के शिकार हो जाते हैं और उपचार के बाद स्वस्थ होने पर कुष्ठरोगियों की सेवा-शुश्रूषा व उपचार के लिए 'सुखनिधान' आश्रम की स्थापना करते हैं। यह उपन्यास 'मैं' शैली में लिखा गया है जिसका 'मैं' स्वयं एक पात्र भी है और जो अपने पत्रकार-नजरिये से घटनाओं पर शोधपरक दृष्टि डालते हुए इस उपन्यास का ताना-बाना बुनता है। 'मैं' के बंड्या के साथ-साथ कुछ और पात्रों यथा चित्रा, माधवी, अनिल, प्रो. भालेराव, श्रीमती कौर, विमलताई, तिलोत्तमा, संन्यासी, सुखेंदु नागचौधरी, विमला बोरगावकर आदि को लिया गया है जो कथा की पूर्णता के लिए तथा उपन्यास के शिल्प को लालित्य प्रदान करने के लिए वार्तालाप के कथोपकथन में सहायक होते हैं।

उपन्यासकार डॉ. देशपांडे ने स्वयं स्वीकार किया है कि "यह दो महापुरुषों के बीच मौन संघर्ष की गाथा है। मात्र इतना ही नहीं, बल्कि भोली-भाली श्रद्धा, पूर्वाग्रह, क्षेत्र विशेषता, पक्षपात, गलतफहमी इत्यादि कई प्रवृत्तियों का खेल भी इसमें शामिल है."

'वैकल्य' की विषयवस्तु महारोग कुष्ठरोग पर अनुवादक रमेश यादव ने सही लिखा है कि "इस रोग को लेकर लोगों के दिलों में कई गलत धारणाएं थीं, शायद आज भी हैं। यह कृति उन

पर प्रकाश डालते हुए जनजागृति की ओर एक सार्थक पहल है. ललित शैली में जनजागृति-स्वरूप का यह लेखन अंधविश्वास को तोड़ता है तथा वैचारिक द्वंद्व के साथ समाजसेवा का अनूठा उदाहरण भी प्रस्तुत करता है.” ‘वैकल्य’ उपन्यास विज्ञानपरकता का तथा इलाज के बांद कुष्ठरोग के ठीक होने का संदेश भी देता है.

पुस्तक के अनुवाद पर अनुवादक ने लिखा है कि, “इस अनुवाद के माध्यम से अनुभवों के ये अप्रतिम क्षण जीवन में संबल बनकर मुझे एक विशिष्ट ऊर्जा प्रदान करेंगे, संभावनाओं के द्वार भी खोलेंगे... यही है छोटे से दिल की छोटी सी आशा...”

‘वैकल्य’ को सत्तरह कालखंडों में विभक्त कर उसकी कथा गढ़ी गयी है और कुष्ठरोग जैसे एक उपेक्षित व समाज-वृणित विषय को सामाजिकता से जोड़ते हुए तथा भ्रम, डर, अंध-विश्वास, अस्पृश्यता व छुआछूत को तोड़ते हुए एवं यथासमय इलाज कराने व स्वस्थ होने का संदेश देते हुए विज्ञानपरक माना है.

उपन्यास का यह मार्मिक कथोपकथन मानवीय संवेदना को झंकृत कर देता है तथा कई सवाल भी खड़े करता है. ‘वे लोग हमेशा कहते, “डॉक्टर इन्हें यहां से ले जाओ....”, “अरे, वो तुम्हारा बाप है. जन्म दिया है तुमको,” “होगा. पर अब नहीं है. उसे रोग है.”

‘वैकल्य’ में एक तरफ अप्पा मार्जनी गुरुजी को कुष्ठरोग हो जाने पर उन्हें उनकी पत्नी स्वीकारती हैं तो दूसरी तरफ प्रसिद्ध नर्तकी तिलोत्तमा को कुष्ठरोग हो जाने पर उसे उसके दिल में बसा प्राणप्रिय संन्यासी भी स्वीकारता है. उपन्यास में स्त्री-पुरुष की समतुल्यता का ख्याल भी रखा गया है लेकिन संन्यासी की जगह (सामान्य) पुरुष को रखा जाने वाला उदाहरण और मजबूती प्रदान करता तथा स्त्री-विमर्श को कुछ कहने का मौका नहीं देता.

उपन्यास का सार अप्पा गुरुजी के इस कथन में समाहित है.. “अब मैं आश्रम का रूपांतरण अस्पताल में कर रहा हूं. स्वस्थ कुष्ठरोगियों को पुनः उन्हें उनके घर में रहने दिया जाय यह ज़िम्मेदारी समाज की है बल्कि समाज का एक कर्तव्य भी है. मैं तो यही कहूंगा कि रोगियों का उपचार घर से ही होना चाहिए.... मित्रो! मैंने संकल्प किया था, यह सच है, किंतु इसका परिवर्तन अब ‘वैकल्य’ में हो गया है...” अंत में अप्पा को मिलने वाली आश्रमजनित तीन करोड़ रुपये की राशि को भी अप्पा जी स्वयं ही श्री-डी प्रोग्राम के जनक डॉ. रावेरकर की संस्था ‘रावेरकर फाउंडेशन’ को दे देते हैं.

अनुवाद निस्संदेह प्रवाहपूर्ण है, किंतु वर्तनी संबंधी कुछ अशुद्धियां खटकती हैं. आंकड़गत दोष (जैसे भारत में कहीं १५

लाख रोगी तो कहीं ३५ लाख रोगी) को भी दूर किया जा सकता था. नामों (अप्पा मार्जनी गुरुजी, डब्ल्यू.जी.मार्जनी, वासुदेव गजानन मार्जनी) की एकरूपता पर भी ध्यान दिया जा सकता था.

सरकारी प्रकाशन के क्रम में मूल्य ठीक-ठाक है और अंततः यह कहना उचित होगा कि ज्वलंत व स्वास्थ्य तथा सामाजिक विषय पर रचित इस उपन्यास के हिंदी रूपांतर का सभी सहित्यिकों के बीच से एक बार अवश्य गुजरना चाहिए.

ई-४३, मेकर कुंदन गार्डन,

एस.एन.डी.टी. कॉलेज के निकट, जुहू तारा रोड, जुहू,
सांताक्रुज (पश्चिम), मुंबई- ४०० ०४९.

एक अनूठा दस्तावेज

डॉ. राहुल

शहर गवाह है (उपन्यास) : डॉ. रूपसिंह चंदेल

प्रकाशक : भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपडगंज,
दिल्ली-११००९१. मूल्य-४५०/-रु.

रूपसिंह चंदेल ने साहित्य की विविध विधाओं में सार्थक सृजन किया है, किंतु उनकी पहचान एक कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित है- विशेषकर एक उपन्यासकार के रूप में. उपन्यास उनके लिए एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से वे अपने चारों ओर बिखरे जीवन-समाज और ऐतिहासिक परिवेश को अभिव्यक्ति देने में पूरी तरह कामयाब हुए हैं. ‘शहर गवाह है’ उनका सद्यः प्रकाशित उपन्यास है जिसमें कानपुर और उसके निकटस्थ गांवों-कस्बों और नगरों के सामाजिक-बोध के साथ क्रांति-कारियों के जीवन-दर्शन और उनके कर्तृत्व को इस औपन्यासिक कलेवर में बड़ी बारीकी से उद्घाटित किया गया है. अछूते इतिहास के इस अनूठे दस्तावेज को पांच भागों में विभक्त किया गया है जो कथात्मक दृष्टि से पारिवेशिक पार्श्वख्य के बावजूद एक दूसरे से ‘को-रिलेटेड’ हैं. उदाहरणार्थ- कथान्विति, संवेदन-शीलता और प्रभावान्विति के तत्वों का मौलिक निरूपण इसकी अपनी विशेषता है.

चंदेल के प्रस्तुत उपन्यास में कानपुर और उसके समीपस्थ-क्षेत्रों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से ही पात्रों-चरित्रों का चयन-चुनाव किया गया है जिससे यह उपन्यास प्राणवान बन गया है. उपन्यास के तीन भाग जहां आजादी-पूर्व के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में महान क्रांतिकारियों के त्याग-बलिदान, ब्रिटिश हुकूमत के काले-

कारनामों तथा तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों के आतिशी अक्रस हैं तो शेष दो भाग सामाजिक जीवन के सरोकारों की जीवंत कथाएं हैं जिनमें लेखक ने अपनी लेखन-शक्ति का समुचित उपयोग किया है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसानों की दशा-दुर्दशा के वर्णन तो पहले भी हुए हैं लेकिन यहां नये नज़रिये से तराशने की कोशिश है। डी.ए.वी. कॉलेज कानपुर में उपन्यास के प्रमुख पात्र बाबू राधिकारमण सिंह की महान क्रांतिकारी चंद्रशेखर आजाद से भेंट और भगतसिंह, विजयकुमार सिन्हा, अजय घोष, सुरेंद्र पांडे, जंगबहादुर सिंह, सुरेश भट्टाचार्य, आदि देश-प्रेमियों के प्रसंग, कुरसवां क्लब, प्रकाश पुस्तकालय के संदर्भ को पढ़ते हुए लगता है, मानों इतिहास के पन्ने पलट रहे हों.... मन में राष्ट्र-राग का भव्य-भाव भर जाता है। उपन्यास की शुरुआत जसवंत नगर नामक गांव के किसानों के जीवन की विसंगतियों से होती है। बीच-बीच में प्रकृति की मोहक-मार्मिक छवि-छटा से मन आल्हादित होता है। अनुभूति के आधार पर सृजित समीक्ष्य उपन्यास में अतीत के आइने में समकालीन दृश्य संवेदना से समन्वित लगते हैं।

इसमें सन् १८५७ की क्रांति और कानपुर के सामरिक महत्व के साथ-साथ कानपुर के औद्योगिक विकास, बलवंत नगर और अन्य कस्बों के विकास-निर्माण का रूपायन अपने पूरे परिवृत्त में उत्कर्ष और ऊंचाई लिये हुए हैं। क्रांतिकारी संगठनों, सामाजिक संस्थानों की देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका का बहुत यथार्थ अंकन हुआ है। कंजी आंखवालों के खूनी-खूंखार चेहरों के कच्चे-चिट्टे भी इस उपन्यास को ऐतिहासिकता प्रदान करते हैं। “बौखलाये अंग्रेज सिपाही ने पेड़ों की झुरमुट में एक मानवाकार टूठ को निशाना साथ ताबड़तोड़ गोलियां दागी थीं।” रामचंद्र मुसद्दी और कमला मुसद्दी (जो चंद्रशेखर आजाद को अपना भाई मानती थीं) का जिक्र और राधिका का कथन-“मातृभूमि के लिए आत्माहुति से बढ़कर कुछ नहीं। उल्लेखनीय हैं।

चंदेल के पूर्व उपन्यासों ‘पाथर टीला’ और ‘नटसार’ में यथार्थ चेतना की जैसी ताज़गी विद्यमान है उसकी जैसी ही अनुभूति-‘शहर गवाह है’ में भी होती है। उपन्यासकार ने बड़ी शिद्दत से आंचलिकता की सभी विशेषताओं को जूही की माला में चंपक पुष्पों की भांति पिरो दिया है। चंदेल का आलोच्य उपन्यास आत्मन्वेषण के स्तर पर समाज-जीवन के सत्य से साक्षात्कार करनेवाला उपन्यास है।

उपन्यास में सामाजिक जीवन के बीच व्याप्त खोखलापन और व्यक्तिमन की तड़प और ललक का अभीष्ट चित्रण हुआ है। लेखक व्यक्ति को उसके पूरे परिवेश में रखकर देखना चाहता है। यद्यपि कहीं-कहीं पात्रों को उनके पूरे परिवेश सहित चित्रित करने के चक्कर में उन्हें छोड़ दिया गया है, या उनकी पकड़ कुछ ढीली पड़ गयी है, जिससे उन्हें सीधे ज़िंदगी के धरातल पर खड़ा कर दिया गया है। दिलीप सिंह, भूरेसिंह ऐसे ही पात्र-चरित्र हैं। बरक्स इसके कि पात्र और परिवेश स्वतः ही सप्राणता और प्रामाणिकता पा जाते। खलीलुर्रहमान, जैतुनिसा, हीरानंद और सुखई सिंह परिगण्य पात्र हैं, जो ज़िंदगी को जोड़ने के लिए अभिशप्त हैं। भीतर टूट चुके समर बहादुर सिंह बाहर से मजबूत दिखते हैं मगर इकट्ठे होकर दिशाहीन और अलग-अलग रहकर गतिहीन बने रहना कुछ लोगों की नियति होती है। लेखक ने ऐसे व्यक्तियों के द्रंद्र-पीड़ा को भी बड़ी गहराई से उकेरा है।

उपन्यास में वस्तुगत विस्तार है... आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक विकृतियों की समस्या का विस्तार। अंतर्बाह्य जन-जीवन के मूल्यगत सामाजिक-राजनीतिक निरूपण का मोह लेखक को निरंतर बांधे हुए हैं। इसीलिए औपन्यासिक घटनाओं को किसी कथासूत्र में संवारने के बजाय वह मनःस्थितियों और प्रकृति का चित्रण जगह-जगह करते चलते हैं। “...पश्चिमी क्षितिज में सिंदूरी रंग बिखरे हुए सूर्य ने किरणें समेट ली थीं।” “जून के अंतिम सप्ताह का पहला दिन था। सुबह से ही आसमान में बादल छाये हुए थे। रात वर्षा हुई थी, परंतु सुबह पांच बजे के आसपास वर्षा थम गयी थी। लेकिन काले-भूरे बादलों के समूह पश्चिम की ओर दौड़ते दिखाई दे रहे थे। मंथर गति से हवा बह रही थी। प्रभा छत पर चली गयी। उसे सारा शहर कोहरे में डूबा हुआ नज़र आया। कहीं-कहीं टिमटिमाती रोशनी दिख रही थी। इससे कथा में सहज रोचकता आ गयी है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि रूपसिंह चंदेल का उपन्यासकार अपने कथ्य के प्रति बड़ा सजग और सतर्क दिखता है। शहरी संस्कृति और सोच के साथ ग्राम्यबोध के बिंब मन को मुग्ध करते हैं। आंचलिकता के रंग स्वाभाविकता को बढ़ाते और प्रामाणिकता पैदा करते हैं। निर्मला कहती है, “हम पुरखन की ड्योढ़ी छोड़ि कै न जइबे।” हलधर बाजपेयी की क्रांतिधर्मी सोच, उनकी आत्मकथा का प्रसंग और सन् १९२७-२८ का देशव्यापी मज़दूर आंदोलन, ९ अगस्त १९२५ का काकोरी कांड, साइमन कमीशन और १९३२ का व्यापक क्रांतिकारी आंदोलन

तिथियां साक्ष्य पेश करती हैं- “जब महान क्रांति-पुरुष हलधर बाजपेयी वास्तविक आज़ादी का सपना देखते असम के गोलाघाट नामक स्थान में एक मकान के मलबे में दबकर समाप्त हो गये थे. वह १८ अगस्त १९५० का दिन था.” लेखक को भी महसूस होता है कि हम स्वाधीन तो हो गये मगर स्वतंत्र नहीं. विकास, नव-निर्माण की गति धीमी है. यहां मोहभंग का स्वर तो नहीं पर चेतना आक्रांत अवश्य है... “छुटभैय्ये सत्ता में हिस्सेदारी के लिए बेताब हैं. यही नहीं, कल तक दबे-छिपे अंग्रेजों का साथ देनेवाले राजे-महाराजे, ज़मींदार आज कांग्रेस में घुसकर अपनी जगह मज़बूत बनाने की कोशिश में हैं. मुझे देश का भविष्य बहुत उज्वल नहीं दिख रहा. इनका शासन का ढंग अंग्रेजों से भिन्न नहीं होगा. क्या पता ये भी उनका अनुकरण करें.....अभी न सही..बाद में.....यानी जातीय संघर्ष को बढ़ावा दो- बांटो और शान करो.”

राधिकारमण सिंह की उक्त उक्ति को यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में देखें तो यह अवधारणा सहज में ही हो सकती है कि वस्तुनिष्ठ सघन अनुभव होने के नाते यथार्थ में अस्तित्ववादी दर्शन की दृष्टि (भी) रहती है.

अस्तित्ववादी चिंतन ने आज जटिल परिवेश में उलझी स्थितियों को समझने की शक्ति और दिशा भी दी है. अस्तु, चाहे सही समाधान न मिले पर असली जायजा ज़रूर मिल जायेगा. आज़ादी के समय पार्टीशन के दौरान कानपुर में विस्थापित परिवार का दारुण दशा-व्यथा का चित्रण दिलकश है. देवेन्द्र अहूजा का परिवार एक ऐसा ही समस्याग्रस्त परिवार है जिसने बंटवारे के दर्दिले दंश को देखा, भोगा, जिया है. पाकिस्तान में अपने घरवालों से बिछड़ जाना, दिल्ली के कश्मीरी गेट इलाके में आकर अस्थायी रूप से बसना और फिर कानपुर प्रस्थान-विस्थापन. अकेलेपन की गहरी अनुभूति, राधे की मां निर्मला की मृत्यु, कहीं राधिका को पुत्र-पुत्रियों के भविष्य की चिंता तो कहीं अपने दायित्व और कर्तव्य के प्रति निर्णय लेने की विवशता-विफलता, तो कहीं प्रेम-प्रणय के प्रसंग आत्मविभक्ति की ओर ले जाते हैं. वितृष्णा भी जगाते हैं. प्रेम-प्रसंग से गुज़रते हुए अज्ञेय (शेखर: एक जीवनी) के शेखर की याद ताज़ा हो आती है.

उपन्यास का उत्तरार्द्ध सामाजिक जीवन-बोध से विशेष जुड़ा है. राधिका रमण के अतीत जीवन की मार्मिक झांकी- मन को सिक्त और रिक्त करती है. चित्रदर्शन बाबू की मृत्यु से उनके जीवन में उदासी भर आती है. एक प्रकार की मुक्ति तथा आरोपित जीवन जीने के लिए मज़बूर से बन जाते हैं राधिकारमण सिंह. पुत्री

शैलजा के अपने पति के साथ उनके मानसिक असंतुलन का लाभ उठाकर छद्म रूप से उनके द्वारा बनवाई गयी ‘कोठी ठाकुरान’ की वसीयत अपने नाम करवा लेना और छोटी बेटी नमिता का कोठी से भावात्मक जुड़ाव और अंत में शैलजा के पति शिवम सिद्धार्थ द्वारा कोठी को बेच दिये जाने के बाद उस पर.. “कोठी इस्माइल खां” खुदा देखकर नमिता का विक्षिप्त हो जाना वाकई मनोवैज्ञानिक व्यंजना का उत्कर्ष लिये हुए हैं. इस प्रकार कहीं कथा-शैली, कहीं आत्म-कथात्मक शैली, कहीं मनोविश्लेषणात्मक शैली, कहीं वर्णनात्मक, कहीं संवाद और कहीं पत्र शैली में रचित यह उपन्यास अपने भीतर कर्मशील प्रेरणाओं, अनुप्रेरणाओं, संप्रेरणाओं और संवेदनाओं को विश्वसनी बनाता है और व्यक्तित्व की पारदर्शिता में पात्रों के चरित्र का विज़न सौंपता है- ऐसा प्रायः कम औपन्यासिक कृतियों में प्राप्त होता है.

सारतः हर उम्दा उपन्यास अपने समय-समाज को सार्थक शब्द देता है. ‘शहर गवाह है’ में भी परिवेश-जन्य युग-स्थिति और जीवंत पात्रों का सहज संबंध स्थापित हुआ है. कालजयी कृति के विशिष्ट गुण-तत्व से युक्त यह उपन्यास आंचलिक संस्पर्श और स्थानीय रंग से अधिक मूर्तमान हो उठा है. चंदेल के लेखन की विशेषता है कि आंचलिक बोध की तूलिका से वे अपनी कथात्मक रचना को अधिक आकर्षक, रोचक और मार्मिक बना देते हैं. अवधी, भोजपुरी शब्द-प्रयोग के साथ अंग्रेजी के शब्द कथा-प्रवाह में बाधक नहीं, बल्कि मिठास घोलते हैं. लोकोक्तियों तथा लोकगीतों के प्रयोग से अतिरिक्त स्वाभाविकता आ गयी है. यूं उपन्यास को पढ़ते हुए कानपुर शहर का एक ‘एब्सट्रैक्ट’ मन-मस्तिष्क में उभरता है और शिल्प-विधा के अभिनव प्रभावी-प्रयोग से आश्वस्त कर जाता है.

साहित्य कुटीर, ४४, साइट-२,
विकासपुरी, नयी दिल्ली-११० ००१८

अपने आस-पास की कविता

नूर मुहम्मद ‘नूर’

अपने होने का एहसास (क. सं.): डॉ. वरुण कुमार तिवारी,
प्रकाशक : नमन प्रकाशन, दरिया गंज,
नयी दिल्ली-११०००२. मूल्य- १२५/- रु.

समकालीन हिंदी कविता का शब्द-अर्थ, विचार-संवेदन जगत निरंतर घना एवं विस्तृत व्यापक होता जा रहा है. इतना, विचार भाषा शिल्प वैविध्य पहले कभी हिंदी कविता में नहीं दिखा

जितना कि आज की कविता में नज़र आता है. मनुष्य के जीवन संघर्ष, उसका वैचारिक-सामाजिक पक्ष एवं भाषा-शिल्प का सर्वथा नया होता स्थापत्य एवं उसमें अपने तमामतर पेचोखम के साथ वर्तमान का निष्ठुर-अदभुत समय की मौजूदगी आज की कविता का जहां शुक्ल पक्ष है, वहीं कृष्णपक्ष भी. मनुष्य के जीवन-संघर्ष, वैचारिक उत्कर्ष एवं भाषिक-शैल्पिक विमर्श का यही शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष डॉ. वरुण कुमार तिवारी के सद्यः प्रकाशित कविता-संग्रह “अपने होने का एहसास” में बड़ी चुस्ती-दुरुस्ती के साथ अभिव्यक्त हो गया है. सच पूछिए तो थोड़ा नये अंदाजों मिजाज से चीज़ों को देखने एवं उन्हें शब्द देने के एक खास रवैय्ये के चलते समकालीन काव्य-परिदृश्य को कुछ और समृद्ध करता है यह कविता-संग्रह. नितान्त अपनी एक अलग शैली, दृष्टि एवं संवेदना के साथ मौजूद इन कविताओं का कवि, कवि कम, मनुष्य अधिक दिखता है. और यही इस संग्रह की कविताओं की उपलब्धि है कि जहां आज का कविता लिखनेवाला आदमी कवि बनने, दिखने के लिए बेतरह मरा जा रहा है, वहीं एक अच्छा कवि अपनी कविताओं से सिर्फ आदमी ही बना रहना चाहता है और यह कम बड़ी बात नहीं. दरअसल यह एक कवि की नहीं एक अच्छे आदमी की लिखी कविताएं हैं जिसमें शब्द-दर-शब्द आदमी के प्रति एक आदमी की पीड़ा-संवेदना, दुःख एवं बेचैनी दर्ज होती चली गयी है- “लेकिन लहलुहान होकर भी/आखिर कविता ही तो है/जो/आदमी को/उसके होने का/ कराती है एहसास.”

दरअसल यह भयावह घने और स्याह होते जंगल में आदमी के तलाश की कविताएं हैं.

कुल इक्यावन कविताओं पर आधारित इस संग्रह की कविताओं में जो ख़ासियत नज़र आती है, वह है कवि का चीज़ों को देखने-दिखाने, समझने का सलीका और मुश्किल से मुश्किल बात को सहजता, सुबोधता एवं सुगमता से कह जाने का तरीका; यह सलीका-तरीका ही कवि को वह भाषा उपलब्ध करा देता है जो आज की समकालीन कविता में बहुत कम दिखती है. ठोस और पकी हुई, दुर्बोधता की ओर जाती फिर भी पारदर्शी. ये अप्रतिबद्ध से प्रतिबद्धता की कविताएं हैं. विचारात्मक संवेदन एवं संवेदनात्मक वैचारिकता की ये कविताएं जो सीधे-सीधे किसी रूढ़ हो चले विचार से पूरी तरह असंबद्ध हैं; पर यह असंबद्धता जीवन से, जीवनानुभव से ही शब्द बनी कविताएं हैं. शब्दों पर अगाध विश्वास की कविताएं-“शब्द/क्यों हो मौन/बज उठो/जीवन की/संपूर्ण संभावनाओं को लेकर.” और क्या गजब कि

कवि के इस आवाहन के साथ ही शब्द जैसे अपना मौन त्याग देते हैं. पके धान की बालियों से झुनझुनाते बच्चों के साथ खिलखिलाते और रजनीगंधा की भीनी गंध फैलाते शब्द, इस संग्रह की कविताओं के चप्पे-चप्पे पर मौजूद हैं और सबसे अहम बात यह कि कविताएं अपनी भाषा के लिबास में हैं. इन कविताओं में कविता की भाषा है और यह भाषा ही है और उसका स्थापत्य-विन्यास जो गद्य को पद्य बना देता है.

प्रेम इस संग्रह की कविताओं की शिराओं में है, दिशाओं में है. प्रेम और संवेदना की अथक तलाश औ ‘प्यास. इस संवेदन-संवादहीन, प्रेमहीन, निष्ठुर होती जा रही दुनिया में, प्रेम के पक्ष में कवि का निवेदन अच्छा लगता है. जिसे नोट गिनने की फुर्सत नहीं वो छत पर जाकर टह-टह चांदनी देखने की फुर्सत कहां से निकाल पायेगा. पैसा ही उसका चांद और चांदनी. यह पैसा ही है भय का कारण. कवि एक बेहतर प्रेममय दुनिया का आग्रही आकांक्षी है. इसी प्रेम-सत्ता को स्थापित करने का ख़्वाब देखती कविताएं हैं ये क्योंकि, “सत्ता और सुविधा की/रंगीन रातों की ओर से/आंखें फेरती कविता/मूल्य और ‘आदमी’ होने की खातिर/पहाड़ होती जिंदगी को/ढोती है/ अपनी पीठ पर.”

शब्द, प्रेम और बच्चे! ये बार-बार इन कविताओं में नमूदार होते हैं. क्या गजब कि प्रेम, शब्दों में बचा हुआ है और शब्द, बच्चों में या शब्द, प्रेम में बचा हुआ है और बच्चे शब्दों में...बच्चे, जो जूतों की रखवाली पर हैं, जो आइस्क्रीम बेच रहे हैं, जो ट्रेन के डब्बे बुहार रहे हैं...बच्चे जो अपने पिताओं द्वारा बेचे जा रहे हैं, किसी को बच्चा नहीं, तो कोई अपने बच्चे को पाल नहीं पा रहा. इन्हीं बच्चों का सहचर मगर शब्द ज़रूर है, और प्रहरी भी. पर संकट में तो शब्द भी है. प्रेम संकट में है. प्रेम करने की जगहें संकट में हैं...शब्द, प्रेम, बच्चे, प्रकृति, वो तमाम, जो जीवन की अनिवार्यता के लिए, जीवन की निरंतरता लिए ज़रूरी है, जो अभी बचा हुआ है, कवि यह सब कुछ बचा लेना चाहता है. कवि की यह संवेदन दृष्टि ही कविताओं की जान है और यह जान जो जहान के लिए है, इन कविताओं के रोम-रोम में समाई हुई है.

एक पृथक भाषिक संरचना एवं आस्वाद की ये कविताएं अपनी विशिष्ट निर्मिति के कारण अलग से चिन्हित हो जाती हैं. दूसरी एक और खूबी है, इनमें आया ‘तपाकपन’, जो कविताओं को ऊंचने से बचाये रखता है. हर स्तर पर चौकन्ना, और जगा हुआ कवि जैसे दूसरों को भी जगाना चाहता है. बच्चों की किलकारी और दादी मां के सपनों को बचा लेने की मुहिम पर निकले कवि का ज़ज्बा ही उसे अहम बना देता है. दर्जनों ऐसी

कविताएं हैं इस संग्रह में जो पढ़ने से तआल्लुक रखती है। फिर भी 'क्षितिज पर एक पगडंडी', 'प्रेम शीर्षक है', 'एक अस्तित्ववान रात के विरुद्ध', 'जब चिड़िया', 'पूरी धरती के लिए', एवं 'प्रत्येक खुशगवार मौसम में' विशिष्ट हैं।

कुल मिलाकर यह कि कविता की यह किताब सजग-गंभीर काव्य-प्रेमियों को पसंद आयेगी क्योंकि सुंदर-सशक्त कविताओं को छापा भी बेहद खूबसूरती से गया है। ...उम्मीद की जानी चाहिए कि कवि की अगली किताब और बेहतर और सुंदर एवं विचारोत्तेजक होगी।

❧ सी.सी.एम.क्लेम्स ला, दक्षिण-पूर्वरेलवे,
३, कोयला घाट स्ट्रीट, कोलकाता- ७०० ००१

साफ़-सुथरा व्यंग्य और सार्थक सोच

❧ गिरीश चंद्र श्रीवास्तव

अपने अपने अधबीच (निबंध) : डॉ. सुरेंद्र वर्मा

प्रकाशक : उमेश प्रकाशन, १०० लूकरगंज, इलाहाबाद.

मूल्य- १४०/- रु.

सुरेंद्र वर्मा की पुस्तक 'अपने अपने अधबीच' पचास निबंधों का संग्रह है जिसमें स्पष्टतः निर्विवाद से दिखनेवाले विषयों के माध्यम से व्यक्ति, समाज व राष्ट्र से संबंधित अनेक ज्वलंत प्रश्नों को रेखांकित करते हुए एक ऐसी सार्थक बहस उठायी गयी है जो व्यंग्य के उन्मुक्त प्रसार और हास्य के अनूठे चुटीलेपन से पाठक के मन को न केवल गुदगुदाती है वरन् अपने भीतर छिपे आक्रोश, दुख, अवसाद, निठल्लापन, नेतागिरी, आतंकवाद, भ्रष्टाचार आदि से उसे रूबरू कराती है। निबंधों के इस संग्रह में व्यंग्य के अनेक आयाम हैं; कहीं हरफनमौला होने की उपयोगिता पर धारदार टिप्पणी है तो कहीं असंतुष्ट रहने के आनंद का हास्य-मिश्रित विश्लेषण है; कहीं आलस्य और निठल्लेपन की गौरव-गाथा की बानगी है तो कहीं सियासत के ककहरे और कुर्सीवादी नज़रिये की चुटीली व्याख्या है; कहीं घुटना, टांग, मुर्गा, मोबाइल, सिगरेट-सिगार आदि जैसे आम विषयों के माध्यम से जीवन की हकीकत की स्पष्ट-बयानी है तो कहीं नयी शिक्षा-नीति, नेताओं के दोगलेपन, बाज़ारवाद, प्रचलित साहित्यिक विधाओं आदि पर हास्योन्मुखी संवाद है।

संग्रह में व्यक्तिगत व सामाजिक मनोवृत्तियों और प्रवृत्तियों से संबंधित सोलह निबंध हैं। दो निबंध आलस्य व निठल्लेपन को लेकर हैं जिनमें बड़े ही रोचक ढंग से प्रमाद के अनेक लाभ बताये

गये हैं। 'अपने अपने अधबीच' शीर्षक से एक स्वतंत्र निबंध भी है जिसमें उन अधकचरे हरफनमौला व्यक्तियों पर चुटीला व्यंग्य है जो चारों ओर हाथ-पैर मारने पर भी किसी क्षेत्र में प्रवीण नहीं हो पाते और कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़ते हुए जैसे-तैसे नाम कमाते हैं। 'असंतुष्टि का सुख' असंतुष्ट व्यक्तियों का जीवन-दर्शन है जिसमें यह सिद्ध करने का चुटीला प्रयास किया गया है कि असंतुष्ट रहने में अपना एक सुख है; कार्यालय हो या बाज़ार, विधानसभा हो या संसद कर्मचारियों व विधायकों एवं सांसदों की ही चांदी है। 'इक लतीफ़ा है ज़िंदगी' में मानव जीवन में दुख के बाहुल्य और खुशी के नितांत अभाव को रेखांकित करते हुए एक ऐसी सकारात्मक सोच को प्रतिपादित किया गया है जिसके अनुसार जीवन को लतीफ़ा मानकर जीने से उसकी नाकामियों, विडंबनाओं और पीड़ाओं को हंस कर उड़ाया जा सकता है। 'कुर्सीनामा' पद, सत्ता, शक्ति व प्रतिष्ठा की प्रतीक बनी कुर्सी पर धारदार व्यंग्य है जिसमें कुर्सी पाने, हथियाने, उससे चिपके रहने, उसे बचाने, हिलाने आदि के चलते चारों ओर मची धमाचौकड़ी का दिग्दर्शन कराया गया है। 'चोरी चोरी से न जाय' में घोटाला, हेराफेरी, रिश्वतखोरी, अपहरण, जमाखोरी, मुनाफ़ाखोरी, तस्करी, ठगी आदि को अपने में समेटे चोरी की विशद व्याख्या की गयी है और धन-दौलत की चोरी के अतिरिक्त पुस्तक, ज्ञान, तकनीक, दिल, कथा, संगीत आदि की चोरी पर व्यंग्य कसा गया है। डायरी एक ऐसा साधन है जिसमें मनुष्य अपनी कुंठाओं, भावनाओं, आक्रोशों, विरोधों, प्रणय-प्रसंगों, कल्पनाओं, आत्म-कथाओं, आत्म-प्रशस्तियों आदि को स्वेच्छा व सुविधा के अनुसार लिपिबद्ध कर सकता है; 'डर मत डायरी लिख' में इन्हीं सब तथ्यों को उजागर करते हुए डायरी लिखने की उपयोगिता पर धारदार टिप्पणी की गयी है। 'थूकना मना नहीं है' सच पूछा जाय तो थूकनेवालों विशेषकर पान खानेवालों- ने कहीं भी थूकने को अपना लोकतांत्रिक अधिकार और परम कर्तव्य मान लिया है। लेखक इस प्रवृत्ति से दुखी है और सोचता है काश लोग भ्रष्टाचार, मुनाफ़ाखोरी, जमाखोरी, कालाबाजारी, लालफीताशाही, रिश्वतखोरी आदि पर थूकते। 'पुरुष-पुराण' में पुरुष को परिभाषित करने के साथ-साथ उसके प्रकार, उसकी विशेषताएं, उसकी श्रेणियां तथा समाज, धर्म, ज्योतिष व नक्षत्र शास्त्र में उसकी स्थिति पर परोक्ष व्यंग्य किया गया है एवं मनुष्य के भीतर विद्यमान दंभ, सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त उसकी प्रधानता तथा ऐरे-गैरे व्यक्तियों को विकास-पुरुष, लौह-पुरुष, कवि-पुरुष, पुस्तक-

पुरुष आदि संबोधनों से विभूषित करने की चाटुकारितोन्मुख प्रवृत्ति पर चोट की गयी है. 'बम बम भोला तंबोला' में नगरों में चल रहे अधिकारी क्लब और उसके भीतर खेले जानेवाले तंबोला पर धारदार टिप्पणी है. 'बात बतंगड़' में भारतीयों के अत्यधिक बातूनी होने पर फबतियां कसी गयी हैं और प्राचीन काल में होनेवाले शास्त्रार्थ, नेताओं की बातूनी धंधेबाजी, वकीलों, प्रवक्ताओं साहित्यकारों की लंबी वर्तृत्व कला के माध्यम से बात का बतंगड़ बनाने और बिना बात के धुआंधार बोलते जाने के कौशल को उजागर किया गया है. 'मनहूस मीमांसा' मनहूस को परिभाषित करने का हास्योन्मुख प्रयास है तथा मनहूसों की क्रिस्मों, उनके लटकों-झटकों, उनकी कारगुजारियों तथा उनके गुणों का तर्क-परक एवं तथ्यात्मक विश्लेषण है. 'मुरगे की जान खतरे में' निबंध में मुरगा नामक पक्षी के माध्यम से मजबूत इंसानों द्वारा कमजोर इंसानों और बलवान देशों द्वारा बलहीन देशों को मुरगा बनाने की खतरनाक प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य कसा गया है. यदि 'सिगरेट के बहाने' सिगरेट पीने के फ़ायदों पर व्यंग्य है तो 'सुखियों में सिगार' में सिगार की बढ़ती हुई लंबाई की बात उठा कर इंसान के बौने होते जाने की त्रासदी को स्वर दिया गया है.

संग्रह में राजनीति और राजनैतिक विषयों से संबंधित दस निबंध हैं जिनमें वर्तमान राजनीति के दोगलेपन, नेताओं की स्वार्थपरता, लोकशाही की बिसात के मोहरों तथा कार्यपालिका के विभिन्न अंगों की मंथरावादी दृष्टि पर करारा व्यंग्य किया गया है. 'आरक्षण एक सुपरहित मुकाबला' में भारतीय लोकतंत्र में पूरी तरह से हावी एक के बाद एक मुद्दे उछालते रहने की सियायत को उजागर किया गया है. 'एक ककहरा राजनीति का' वर्तमान भारत की राजनीति पर ऐसा तीखा व्यंग्य है जिसमें अवसरवादी, भ्रष्ट व घोटालेबाज राजनेताओं की पोल खोली गयी है.

'खामोश खिचड़ी पक रही है' में खिचड़ी की उत्पत्ति, उसके प्रकार, उसके स्वाद आदि की विवेचना करते हुए खिचड़ी और राजनीति के संबंध को स्पष्ट किया गया है तथा भारत की खिचड़ी संस्कृति, बच्चों की खिचड़ी भाषा, खिचड़ी सरकार व खिचड़ी भोज आदि पर व्यंग्य किया गया है. 'दिमागी बुखार' में सिनेमा, क्रिकेट, परीक्षा और चुनाव पर चोट की गयी है. 'नयी शिक्षा नीति का आदर्श प्रश्न पत्र' में सरकारी कर्मचारियों की कामचोरी, सियासत की गिरगटी प्रवृत्ति, दीमक लगे लोकतंत्र, मनुष्य की स्वार्थपरता, उसके अकारण दंश का स्वभाव तथा दोगलेपन के गुण आदि पर चुटीला व्यंग्य किया गया है. 'नेता और

नसेनी का खेल' में सांप और सीढ़ी के खेल की तर्ज पर परिकल्पित नेता और नसेनी के खेल के माध्यम से वर्तमान राजनीति में उतरे नेताओं की तस्वीर उतारी गयी है. 'पद के लाभ बनाम लाभ के पद' में पद पर रहने के लाभों पर तीखी टिप्पणी करने के अतिरिक्त उन लोगों की भी झलक दिखायी गयी है जो कुछ पदों के साथ उपलब्ध हो जाया करते हैं. 'बड़े काम की चीज़ है घोड़ा' में वर्तमान प्रजातंत्र में नेताओं के समर्थकों की उस नस्ल पर व्यंग्य किया गया है जो चुनाव में अपनी सेवा प्रदान करते हैं, आवश्यकता पड़ने पर प्रदर्शन करवाते हैं तथा बिकाऊ होने के चलते अपने हर नये स्वामी के प्रति वफ़ादारी दिखाते हैं. 'राजनीति से प्रेरित' वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था पर धारदार टिप्पणी है जिसमें उसे घुसपैठिया, शांति-विध्वंसिनी तथा अन्याय, पक्षपात और भेदभाव करनेवाली बताया गया है. 'हमारा असली वाद मंथरावाद' देश की वर्तमान शासन-व्यवस्था पर पूरी तरह हावी हुई प्रायः स्वार्थी और सुस्त नौकरशाही की कारगुजारियों पर व्यंग्यपूर्ण चोट है.

संग्रह में शारीरिक अंगों से संबंधित चार निबंध हैं जो घुटना, टांग, नाक और दांत को लेकर हैं. सरकार कैसे आतंकवादियों के आगे घुटने टेकती है, अमरीका की घुड़कियों में आ जाती है यह 'घुटने का दर्द' में दर्शाया गया है. 'टांग पर टिप्पणी' हर बात में टांग अड़ाने, लगाने और किसी को बढ़ते देख कर उसे रोकने की प्रवृत्ति पर करारा प्रहार है. 'नाक कुरेदने की कला' में एक दूसरे को नीचा दिखाने और अपमानित करने की दुष्प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया गया है. 'आना और फिर जाना उनका' बचपन में दांत निकलने और बुढ़ापे में उनके गिरने से जुड़े हुए दर्द का ऐसा यथार्थ और व्यंग्यात्मक चित्रण है कि दांतों तले उंगली दबानी पड़ती है.

संग्रह के निबंधों में पांच निबंध बाज़ारवाद से संबंधित हैं. 'पटाने का पाठ' में सौदे पटाने या कर्ज पटाने से लेकर ग्राहकों, राजनैतिक दलों, सरकारों, सांसदों, विपक्षियों आदि को पटाने की बढ़ती मांग पर चुटीला व्यंग्य किया गया है. 'पैसे की महिमा' में पैसा कमाने, बटोरने, खर्चने, फेंकने, खाने, पचाने, हजम करने, चुराने, मांगने, उठाने और बचाने आदि भिन्न-भिन्न स्थितियों में मनुष्य की दुर्गति पर यथार्थोन्मुख किंतु कटु वार किया गया है. 'प्रेम से बोलो जय माया दी' में मनुष्य की धन के प्रति प्राकृतिक लालसा और साथ ही उसे महाठगिनी माया कह कर दुत्कारने के ढोंग पर धारदार व्यंग्य है. 'बाज़ारवाद की गति न्यारी' तथा 'माल और मंडी का अर्थशास्त्र' में उपभोक्तावादी सभ्यता के

प्रभाव से बाज़ार में परिवर्तित हो चुकी दुनियां पर चोट की गयी है, संग्रह के तीन निबंध धर्म और आयुर्वेद से संबंधित हैं। 'गुरू-गाथा' में शिक्षा, संगीत, साहित्य, प्रबंधन तथा आध्यात्म के क्षेत्र में बुरी तरह फैले गुरूवाद की पोल खोलते हुए यह व्यावहारिक सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि यदि इन क्षेत्रों में सफलता पानी हो तो गुरू अथवा गुरू-पत्नी के निरंतर चक्कर लगाने होंगे। 'गोमूत्र भी इंपोर्टेड' में गोमूत्र चिकित्सा जैसी प्राचीन भारतीय पद्धतियों के अमरीकीकरण पर टिप्पणी करते हुए अमरीका द्वारा गोमूत्र के पेटेंट करा लिये जाने के लाभों पर व्यंग्य कसा गया है। 'भांति भांति के बाबा' विभिन्न प्रकार के बाबाओं पर चुटीला वार करता है और बच्चों का संबोधन बने बाबा, उपाधिवाले बाबा, असमय बूढ़े हो जानेवाले बाबा, उपाधिवाले बाबा, घूनी रमाने व भिक्षा मांगनेवाले बाबा आदि का कच्चा चिट्ठा खोलने का प्रयास करता है।

संग्रह के बारह निबंध विविध विषयों से संबंधित हैं। 'मेरे अखेल अनुभव' में लेखक ने भाग-दौड़ वाले खेलों में अपनी अरुचि का रोचक वर्णन करते हुए सुबह-सुबह उठ कर दौड़ने-भागने जैसे खेल की हिमाकत पर चोट की है। 'मोबाइल परिदे' मोबाइल फोन का अंधाधुंध प्रयोग करनेवाले व्यक्तियों पर कटाक्ष है जिसके माध्यम से उसके बातूनी, घुघ्यू, शांत, गौरैया और मोर के स्वभाव वाले उपभोक्ताओं की आदतों पर प्रकाश डाला गया है। 'विकल्प-कथा' रोटियों, राजनैतिक दलों, साबुनों, डिटर्जेंटों, साहित्यिक विधाओं यहां तक कि प्रधान मंत्रियों तक के विकल्प न दूढ़ पाने की पीड़ा पर करारा व्यंग्य है। 'सर्दी-जुकाम का समाज-शास्त्र' में सर्दी-जुकाम के अचानक आक्रमण से त्रस्त व्यक्ति की विवशता पर व्यंग्यात्म टिप्पणी की गयी है। 'सारी दुनिया एक डलिया में' एक अदना सी चीज़ डलिया के माध्यम से सारे संसार को एक ईश्वर-प्रदत्त डलिया का रूप प्रदान किया गया है। 'सुबह की सैर' में अपने कवि-मित्र के साथ सुबह टहलते समय उनकी कविताओं को झेलने की लेखकीय पीड़ा और अंत में विवश होकर टहलने से अलविदा कहने का अतींद्रिय सुख मुखरित होते हैं। 'सेवा के लिए शुक्रिया' वर्तमान समय में व्याप्त रिश्वत लेने और देने का प्रवृत्ति पर करारी चोट है और 'हंसी खेल नहीं है मकखी मारना' में लेखक ने भीख मांगने जैसे अदने से कार्य को इतना खंगाला है कि मज़ाल है कि कोई मकखी बच जाय। 'हक से मांगो भीख' में भिखारियों व साधुओं के अतिरिक्त बड़े-बड़े राष्ट्रों द्वारा छोटे राष्ट्रों को भिक्षा दिये जाने की प्रवृत्ति पर चोट की गयी है। 'हमारी तैलीय संस्कृति'



भारत में पूर्ण रूप से व्याप्त मिलावट की संस्कृति पर कटु व्यंग्य है और 'हिंदी साहित्य की नयी विधाएं' वर्तमान हिंदी साहित्य में प्रचलित नयी-नयी विधाओं पर धारदार टिप्पणी है।

संग्रह के प्रायः सभी निबंध स्वस्थ व्यंग्य की धारदार चाकू से भीतर तक चोट करते हैं तथा पाठक को नंगी सच्चाई से सामना कराके उसके हृदय को झकझोर देते हैं।

निबंध किसी भी विषय पर हों उनमें लेखक की ईमानदार सोच है, उसकी यथार्थोन्मुखी कल्पनाशीलता है और भोंडेपन से दूर रहने का प्रयास है। भाषा बोलचाल की है और निबंध पढ़ते-पढ़ते ऐसा लगता है जैसे कल-कल नदी बह रही हो। अभिव्यक्ति में कसाव और तलवार की नोक का तीखापन है जो पाठक को कथ्य से न केवल अभिन्न रूप से जोड़ती है बल्कि उसकी हकीकत से उसे आश्चर्य भी करती है। राजनीति में गुरगों के लिए 'घोड़े' और नेताओं के समर्थकों के लिए 'नसेनी' जैसे बिंबों का प्रयोग बहुत प्रभावी है। कुछ निबंध तो ऐसे हैं कि मन होता है कि पढ़ता ही चला जाय और कुछ निबंध पाठक को, आक्रोश से भर देते हैं। वर्तमान राजनीति के घोर पतन के प्रति लेखक पूर्णतया जाग्रत व चिंतित है और शायद इसी कारण अनेक निबंधों में उसके विकृत रूप एवं उसके दुष्परिणामों पर व्यंग्य की पुनरावृत्ति हुई है; इसी प्रकार रिश्वतखोरी एवं भ्रष्टाचार से भी वह बहुत त्रस्त है जिसके कारण विभिन्न निबंधों में बार-बार उन पर चुटीला व्यंग्य किया गया है। किंतु भारतीय शासन-तंत्र तथा सामाजिक व्यवस्था में लाइलाज़ बीमारी की भांति फलती-फूलती इन विकृतियों को जितना भी कोसा जाय उतना ही श्रेयस्कर है इस लिए कहीं-कहीं पुनरावृत्ति बिल्कुल नहीं खटकती। कुल मिला कर संग्रह के अधिकांश निबंध साफ़-सुधरे व्यंग्य देने के साथ-साथ एक सार्थक सोच को भी जन्म देते हैं जो हमारी सामाजिक चेतना को भीतर तक प्रभावित करती है।

एफ ३०१, अंसल प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट्स,
२८ सरोजिनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद- २११००१

गीत

लंबी दूरी है

✍ जितेंद्र 'जौहर'

अम्मा ने आटे के नौ-दस
लड्डू बांध दिये;
बोलीं- "रस्ते में खा लेना,
लंबी दूरी है!"

ठोस प्रेम का तरल रूप
आंखों से छलकाया.
मां की ममता देख कलेजा
हाथों में आया.
'दही-मछरिया' कहकर मेरे
गाल-हाथ-चूमे.
समझाया कि-सिर पे गमछा
बांध लियो लू में!

बार-बार आंखों की गीली
कोरें पोंछ रहीं;
दबे होंठ से टपक रही,
बेबस मंजूरी है!
बोलीं- 'रस्ते में खा लेना
लंबी दूरी है!'

पिता मुझे बस में बैठाने
अड़डे तक आये.
गाड़ी में थी देर, जलेबी-
गरम-गरम लाये.
छोटू जाकर हैंडपंप से
पानी भर लाया ।
मुझे पिलाकर पांव छुये
कह- 'चलता हूं...भाया!'

तन की तंदूरी ज्वाला
दर-दर भटकाती है;
गांव छोड़के शहर जा रहा-
हूं, मजबूरी है!
बोलीं- 'रस्ते में खा लेना,
लंबी दूरी है!'

ज्यों ही गाड़ी, छूटी, हाय!
पिता बहुत रोये
झुरीं वाले गाल, आंख के
पानी से धोये

गज़ल

✍ प्रेमलता त्रिपाठी

जिस घड़ी से हम मशहूर होने लगे,
जिंदगी के उगर सूने-सूने लगे ।
चाहतों ने किया हमको मजबूर यूँ,
बस लिफाफों में हम वक़्त ढोने लगे ।
रात की न खबर न खबर दोपहर,
तालियों के बिछौनों पे सोने लगे ।
ये है मस्रूफियत या जुनूने-सफर,
खुद निगाहों से भी दूर होने लगे ।

✍ ४१-सतपुड़ा,
अणुशक्ति नगर, मुंबई- ४०००९४

रुंधे गले से बोले, "लल्ला!
चिट्ठी लिख देना ।
'रस्ते में कोई कुछ खाने
को दे, मत लेना ।

जहखुरानी का धंधा
चलता है शहरों में;
सोच-समझकर चलना
बेटा! बहुत ज़रूरी है!"
बोलीं- 'रस्ते में खा लेना
लंबी दूरी है!'

शहर पहुंचकर मैंने, दर-दर
की ठोकर खायी.
नदी किनारे बसे गांव की
याद बहुत आयी.
दरवाजे का नीम, सामने
शंकर की मठिया.
पीपलवाला पेड़ और वह
कल्लू की बग़िया.

मुखिया की बातें रह-रहकर
कानों में गूंजी;
घर का चना-चबेना, बेटा!
हलवा-पूरी है ।
बोलीं- 'रस्ते में खा लेना
लंबी दूरी है!'

✍ एन-३३/६, रेणुसागर,
सोनभद्र (उ.प्र.) २३१२१८

चुनौती

राजीव नयन तिवारी

कश्मीर से केरल तक
पंजाब से मिजो, नागा तक
आतंकवाद, उग्रवाद, अलगाववाद
कर रहा है दिन रात खूनी-तांडव.
कहता है अखबार
नक्सलवाद की चपेट में
१३ राज्यों के १६५ जिले हैं आज.
भोले-भोले हरिजन आदिवासियों के साथ
अध्ददेशी व विदेशी मिशनरियां
देकर विविध प्रलोभन
खेल रही है धर्मांतरण का धिनीना-खेल.
धर्मांतरण....
बो रहा है राष्ट्रान्तरण का विष-बीज.
मानवता लज्जित कलंकित
कूर अमानुषी निठारी कांड.
कर रहा करुण-क्रंदन
मजदूर किसान /सिगूर, नंदीग्राम.
चहूं और संकट, विपदा
खतरे में आंतरिक सुरक्षा
सीमा भी नहीं सुरक्षित
सामने खड़ी है मुंह बाये
सुरसा-सी चुनौती.
लेकिन इस लहु-लुहान देश में
कलमकार, फिल्मकार, कलाकार भी
बगलें झांकने लगते हैं वयों
इन चुनौतियों के नाम पे.....
अब लगे हैं वयों कतराने
बुद्धिजीवी भी राष्ट्रवाद से.....
ऐसे में व्यर्थ है करना
वोट के सौदागरों की बातें.
जिनके दिलो दिमाग में सिर्फ
कुर्सी और सत्ता की सुरक्षा ही
है एक मात्र चुनौती.

सं. 'मंदारश्री',
कुड़री बाँसी, जिला-बांका,
भागलपुर (बिहार) ८१३१०४

सुख-संचार

डॉ. संत कुमार टंडन 'रसिक'

मुझे अच्छा लगता है
बांटना, छोटी-छोटी खुशियां
अधिक से अधिक दूसरों को,
क्योंकि मेरी जिंदगी
गमों से लबरेज है
और जब
मुझसे खुशी पाकर
वे दूसरे खुश होते हैं
तो कम होते हैं
मेरे अपने दुख-दर्द
कभी तुम भी देखो
अपना कर मेरी यह जीवन-शैली,
फिर देखोगे
कि तुम्हारी पीड़ाएं भी
कम हो रही हैं
और सुख
कैसे चले आते हैं तुम्हारे पास.

५३५/१- आर, मीरापुर,
इलाहाबाद- २११००३

गज़ल

महेश कटारे 'सुगम'

जहां में प्यार की सूखी नदी जैसे नहीं हैं हम,
तिमिर में जुगनुओं की रोशनी जैसे नहीं हैं हम।
शरण में जो भी आता है उसे राहत ही देते हैं,
दरख्तों ने बताया आदमी जैसे नहीं हैं हम।
बढ़ा के हाथ कोई भी कभी भी तोड़ ले हमको,
गुलिस्तां में गुलाबों की कली जैसे नहीं हैं हम।
हमारे वास्ते दो चार मय के जाम काफ़ी हैं,
समंदर के लवों की तिश्नगी जैसे नहीं हैं हम।
हमारे पास आकर कोई भी प्यासा नहीं रहता,
कहा दरया ने सेहरा की खुशी जैसे नहीं हैं हम।
घटा बोली बरसते हैं तो हम जम कर बरसते हैं,
'सुगम' बे-वक्रत बारिश की नमी जैसे नहीं हैं हम।

हास्पिटल कैंपस, कुरवाई,
जिला विदिशा (म.प्र.)

मेरा हेमंत जिंदा है

✍ अनार सिंह वर्मा

(‘कथाबिंब’ के अप्रैल-जून ०६ अंक में ‘सागर-सीपी’ स्तंभ में सुश्री संतोष श्रीवास्तव की अभिव्यक्ति से प्रेरणा पाकर.)

कौन कहता है
हेमंत मर गया है?
हेमंत जिंदा है,
यह अलग है
कि वह दुनिया को नहीं दिखता
सो दुनियां कहती है
हेमंत मर गया है.
हेमंत जिंदा है,
मेरी सांसों में
आंखों में
शब्दों में
चित्रों में
मेरी हर चीज में,
दुनियां को पता नहीं
मां से पहले पुत्र नहीं मरता
मां के लिए पुत्र नहीं मरता
फिर मेरा हेमंत कैसे मर गया
मेरा हेमंत जिंदा है,
सच कहती हूं
मेरा हेमंत जिंदा है,
मेरा हेमंत सबसे नायाब है
सो ‘कहीं कुछ हो न जाय’ के भय से
छुपा लिया है अपने में
वह मुझमें है,
स्वस्थ और सुरक्षित है,
संस्कारित और शिक्षित है,
मेरा हेमंत
अगहन-पूस के हेमंत की तरह
अल्पजीवी नहीं
चिरजीवी है,
वह कल भी था
आज भी है
कल भी रहेगा.
मेरे हेमंत से
मेरा संवाद जारी है
वह मेरी योजनाओं में सहभागी है
मेरा खयाल रखता है
मुझे रोने नहीं देता है
मुझे बहकने और भटकने नहीं देता है
दुनियां-वालो!

कान खोलकर सुन लो
‘हेमंत मर गया है’ वाक्य
मेरे लिए मरने जैसा है
यह वाक्य मुझको रुलाता है
असीम-अथाह दुःख पहुंचाता है
सो अब कभी मत कहना
कि मेरा हेमंत मर गया है
मेरा हेमंत जिंदा है
देखो-देखो
वह मुझे पुकार रहा है
मां....मां.....कह रहा है
मेरा हेमंत जिंदा है.

✍ ‘मधुबन’, दीनदयाल कॉलोनी,
कासगंज, एटा (उ.प्र.)- २०७१२३

नया घर

✍ हितेश व्यास

ये नयी सदी के नये आदमी का नया घर है
इस घर में पितरों, पूर्वजों और अग्रजों की छत नहीं है
स्नेह के वातावरण नहीं हैं इस नये घर में
प्रेम की खिड़कियां नहीं हैं
नहीं हैं ममता के द्वार
ये बिना रोशनीदानों, खिड़कियों और
दरवाजों का नया घर है
अलबत्ता दीवारें हैं,
पहले तो मकानों के चारों तरफ दीवारें हुआ करती थीं
या कमरों के बीच
अब इस नयी सदी के नये घर में
दीवारें ही दीवारें हैं,
आदमी और आदमी के बीच दीवार तो
पिछले दिनों खड़ी हो गयी थीं
कम से कम वहां दीवार के
इधर और उधर तो आदमी था
अब ये नया आदमी, आदमी नहीं रहा
दीवार बन गया है,
नये घर में चलती-फिरती दीवारें हैं
दीवारों ही दीवारों से भरा हुआ है नया घर
इस नयी सदी के नये आदमी के नये घर में
आपका स्वागत है.

✍ १, मारुति कॉलोनी, नया पुरा, कोटा-३२४००१

तुम्हारी छवि

विदा लेते हुए,
तुमने अचानक पुकारा था मुझे,
और करीब आकर
मेरे माथे पर अंकित कर दिये थे,
अपने होठों के युगल चिन्ह,
कंपकंपाते होठों से
कुछ न कहा था तुमने,
फिर भी,
पढ़ लिया था मैंने,
तुम्हारी आंखों में,
न जाने का अनुरोध.....
उस पल तो तुमसे
विदा ले ली थी मैंने.....सोनां,
पर दरवाजे पर खड़ी
दुपट्टे को अंगुली में लपेटती,
आंखों में आसुओं को थामकर,
मुझे निहारती....
तुम्हारी छवि से मैं
आज तक.....
विदा नहीं ले पाया.....

कृतिका केशरी

सहयात्री

याद है.....
जीवन के सफर पर,
जब हम पहली बार
साथ चले थे,
तो तुमने
हौले से थाम ली थी,
मेरी बांह.....
और अमिट अविश्वास के साथ
टिका दिया था
अपना सिर.....
मेरे कंधे पर.....सोनां!
सोचता हूँ अब तक....
कि क्यों कायम नहीं रख सका मैं,
तुम्हारे उस विश्वास को
कैसे छोड़ सका मैं तुम्हें,
दुनिया की भीड़ में,
हर सफर
अकेले तय करने के लिए.....!

६४, किशोर गंज,

बड़ा बाजार, पन्ना (म.प्र.)

लघुकथा

मन की मुक्ति

डॉ. महाराज कृष्ण जैन

राजा ने सुना था कि एक महान संत शालवन में कुटिया बनाकर रह रहे हैं. एक दिन वह घूमता हुआ संत के दर्शनों को जा पहुंचा. कुटिया में उस समय संत अकेले थे. एक कुत्ते का पिल्ला ऊधम मचा रहा था और संत छोटे बालक की तरह उस पिल्ले से खेल रहे थे.

राजा को यह देखकर बड़ा आघात लगा. उसने अपनी शंका संत के सम्मुख व्यक्त कर दी - महाराज, क्षमा करें, आप जैसे साधु को जप-तप, भजन-ध्यान, कीर्तन-पूजन छोड़कर एक पिल्ले के साथ खेलता देखने की आशा मुझे नहीं थी. यह क्या आपको शोभा देता है?

संत मुस्कराये. फिर उन्होंने राजा के कंधे पर लटके धनुष की ओर संकेत कर के पूछा - राजन्, बहुत सुदृढ़ धनुष है तुम्हारा. पर इसकी प्रत्येक इस समय खुली क्यों है? इसे बांधकर नहीं रखते?

राजा ने कहा - प्रभु, धनुष की डोर हर समय बांधकर नहीं रखी जाती. काम पड़ने पर ही बांधी जाती है. हर समय बांधकर रखें तो धनुष में लोच नहीं रहता. फिर उससे तीर चलाना संभव नहीं होगा. वह बिल्कुल बेकार हो जायेगा.

संत ने कहा - वत्स. यही गति मन की है. मन के धनुष को भी हर समय बांधे रखना उचित नहीं है. निरंतर ध्यान और साधना का तनाव भी मन की क्षमताओं को कम कर देता है. उसे मुक्त भी रखना चाहिए. अवकाश भी देना चाहिए. तभी मन साधना के योग्य रहेगा.

द्वारा श्रीमती उर्मि कृष्ण, ए-४७, शास्त्री कॉलोनी, अंबाला, छावनी-१३३००१



गीता डोगरा

मैं तो उसके
दरवाजे पर
रोज़ सुबह जाती थी
सजदा करने
तब देखती थी
कितने ही चिराग
जल रहे हैं
दहलीज पर उसकी,
तब मेरी रूह
और
मेरी आंखों में
जाग जाते थे
चेतना के स्वर.....

मैंने सुना था
कि कोई इश्क में डूबी
उसकी दरगाह पर
पांचवा चिराग जलाने जाती थी,
तो मैंने भी
अपनी तकदीर को
रूई की बात बना दिया और
खुद पांचवां चिराग बन
जल रही हूँ
तेरी दहलीज पर तब से.....!

३७९ फ्रेंड्स कालोनी,
डीएवी कॉलेज रोड, जालंधर- १४४००९

: प्राप्ति-स्वीकार :

- वैरागी का गणतंत्र (उपन्यास) : निर्भय मल्लिक, यूनिक्स प्रकाशन, ९/२/१ पश्चिम घोषपाड़ा रोड, कांकिनाड़ा बाजार, उत्तर चौबीस परगना (प.बं.) मू. १०१.
- बेघर आंखें (क.सं.) : तेजेंद्र शर्मा, अरु पब्लिकेशन्स प्रा. लि., ९ दरियागंज, नयी दिल्ली- ११०००२. मू. २००/-
- लोककथा की द्रोपदी (क.सं.) : देवेंद्र सिंह, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर- ८४२००२. मू. १२५/-
- इम्तिहान (क.सं.) : श्याम सुंदर निगम, १४१५ पूर्णमा, रतनलाल नगर, कानपुर- २०८०२२. मू. ३१.५०
- सुर्खाब के पर (क.सं.) : कमलेश शर्मा, रचना प्रकाशन, १५ गोयागेट सोसायटी, प्रतापनगर, बड़ौदा (गुज.). मू. ६०/-
- कहानी की तलाश (क.सं.) : सुभाष चंद्र गांगुली, आरती प्रकाशन, ३६४, आवास विकास कॉलोनी, यो. २, झूंसी, इलाहाबाद. मू. १५०/-
- भांड मंडली का भूत (क.सं.) : शिवमूर्ति सिंह, शब्द भारती, ८४ ओल्ड लश्कर लाइन, बैरहना, इलाहाबाद. मू. १५०/-
- अपने-अपने अधबीच (व्यंग्य) : डॉ सुरेंद्र वर्मा, उमेश प्रकाशन, १०० लूकर गंज, इलाहाबाद. मू. १४०/-
- समकालीन सौ लघुकथाएं (ल.सं.) : सं. डॉ सतीश दुबे, आकाश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, ई- १०/६६३, उत्तरांचल कॉलोनी, लोनी बॉर्डर, गाजियाबाद-२०११०२. मू. १५०/-
- आओ इंसान बनायें (ल.सं.) : पृथ्वीराज अरोड़ा, सुकीर्ति प्रकाशन, डी.सी.निवास के सामने, करनाल रोड, कैथल १३६०२७. मू. ८०/-
- तरंग-त्रय (काव्य) : सं. डॉ रमेश नीलकमल, मीनाक्षी प्रकाशन, एम.बी. ३२/२ बी, गली नं. २, शकरपुर, दिल्ली- ११००९२. मू. ३००/-
- अकारण (क.सं.) : राजेंद्र आहुति, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर, मुजफ्फरपुर- ८४२००२. मू. १५०/-
- सच तो यही है (क.सं.) : सदाशिव कौतुक, साहित्य संगम, 'श्रमफल', १५२० सुदामा नगर, इंदौर- ४५२००९. मू. १००/-
- मैं अयोध्या (क.सं.) : हरeram समीप, शब्दालोक, सी-३/५९ नागार्जुन नगर, सादतपुर विस्तार, दिल्ली- ११००९४. मू. ७५/-
- सांस-सांस वृंदावन (क.सं.) : मधु प्रसाद, श्री प्रकाशन, ३२ सरकार लेन, कोलकाता- ७००००७. मू. १२५/-
- कनॉट प्लेस पर बीड़ी पीती दिल्ली (क.सं.) : अखिलेश कुमार, सरिता बुक हाउस, १८६, गुरू रामदास नगर, गली नं. २, लक्ष्मीनगर, दिल्ली- ११००९२. मू. १२०/-
- पूजाग्नि (का.सं.) : बृजेंद्र अग्निहोत्री, जिला कारागार के पीछे, मनोहर नगर, फतेहपुर (उ.प्र.) २१२६०१. मू. ९५/-
- तुम्हारे लिए (ग.सं.) : डॉ. इंदिरा अग्रवाल, कश्ती प्रकाशन, जयगंज, अलीगढ़- २०२००१. मू. ५०/-

कथासिंब / जुलाई - दिसंबर २००७ ॥ ६० ॥

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका (१९७९ से निरंतर प्रकाशित)

विज्ञापन दरें एवं आकार संबंधी जानकारी

पत्रिका-आकार : २४ सेंमी X १९ सेंमी छपाई का क्षेत्रफल : २१ सेंमी X १६ सेंमी

स्थान	दर	स्थान	दर
पिछला आवरण	: १०००० रु.	पूरा पृष्ठ	: ३००० रु.
दूसरा/तीसरा आवरण/ भीतरी रंगी पृष्ठ	: ५००० रु.	आधा पृष्ठ	: २००० रु.

पैनल विज्ञापन (एक पृष्ठ का १/६ भाग) : ७५० रु.

अधिक जानकारी के लिए कृपया संपर्क करें :

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक, 'कथाबिंब',
ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन कारी रोड, देवनार, मुंबई- ४०० ०८८.

निवेदन

रचनाकारों से

'कथाबिंब' एक कथा प्रधान त्रैमासिक पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाओं, कविता, गीत, गज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.
२. रचनाएं कागज के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों अथवा टंकित करवा कर भेजें.
३. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा अवश्य साथ रखें. अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा.
४. सामान्यतः प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है, अन्य रचनाओं की स्वीकृति या अस्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, गज़ल आदि) भेजें.

ग्राहकों/सदस्यों से

कृपया समय रहते अपने शुल्क का नवीनीकरण करा लें. नये सदस्यों/ग्राहकों को शुल्क प्राप्त होने की अलग से सूचना भेजना संभव नहीं है. यदि तीन माह के भीतर नया अंक न मिले तो कृपया अवश्य सूचित करें.